योगवाणी

वर्ष ४६, फरवरी, २०२१

विषयानुक्रम

क्र.सं.			पृष्ठ
१.	शिवाष्टकम्	: श्रीमच्छंकराचार्य	२
२.	श्रीनाथ जी का स्तवन	:	४
३.	योगामृत		५
४.	गोरखबानी		६
५.	अमनस्क योग	: योगी आदित्यनाथ	७
६.	योगसिद्धि	: सन्त ज्ञानेश्वर	११
७.	पिण्ड और ब्रह्माण्ड	: आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	१६
८.	उत्तर नाथयोगी	: प्रो. रामदरश राय	२१
९.	भारत के गौरव-पतंजलि	: कृष्ण मुरारी लाल श्रीवास्तव	२४
१०.	गोसेवा की महिमा	: वरुण कुमार वर्मा 'वैरागी'	२६
११.	वाणी की शक्ति	: हृदय नारायण दीक्षित	२९
१२.	मन चंगा तो कठौती में गंगा	: डॉ. कैलाश पति पाण्डेय	३२
१३.	गुरु श्री गोरखनाथ मन्दिर - मकर संक्रान्ति पर्व और खिचड़ी मेला	: डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त	३७
१४.	बरगद	: चौथा आवरण	

योगवाणी

वर्ष ४६, फरवरी, २०२१

आर.एन.आई. २९०७५/७६

वार्षिक सदस्यता: १२५/-, द्विवार्षिक सदस्यता: २५०/-,

पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-, आजीवन सदस्यता: १२००/-,

एक प्रति का मूल्य: १५/-

मुद्रक: **मोती पेपर कनवर्टर्स**, डी4/1, सेक्टर 13, गीडा, गोरखपुर, दूरभाष : 0551-2580093

॥ ॐ ॥ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध सम्पादक

प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

फूलचन्द प्रसाद गुप्त

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - 273015

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com

दूरभाष : (0551) 2255453, 2255454

फैक्स : (0551) 2255455

शिवाष्टकम्

श्रीमच्छंकराचार्य

तस्मै नमः परमकारणकारणाय
दीप्तोज्ज्वलज्ज्वलित-पिंगललोचनाय।
नागेन्द्रहारकृत-कुण्डलभूषणाय
ब्रह्मेन्द्र-विष्णु-वरदाय नमः शिवाय॥१॥
श्रीमत्प्रसन्न-शशिपन्नग-भूषणाय
शैलेन्द्रजावदन-चुम्बित-लोचनाय।
कैलासमन्दर-महेन्द्र-निकेतनाय
लोकत्रयार्तिहरणाय नमः शिवाय॥२॥
पद्मावदातमणिकुण्डलगोवृषाय
कृष्णागरुप्रचुर-चन्दनचर्चिताय।
भस्मानुषक्त-विकचोत्पल-मल्लिकाय
नीलाब्जकण्ठ-सदृशाय नमः शिवाय॥३॥
लम्बत्सपिगंलजटामुकुटोत्कटाय
दंष्ट्राकराल-विकटोत्कट-भैरवाय।
व्याघ्राजिनाम्बरधराय मनोहराय
त्रैलोक्यनाथ-नमिताय नमः शिवाय॥४॥
दक्षप्रजापति-महामख-नाशनाय
क्षिप्रं महात्रिपुरदानघातनाय।
ब्रह्मोर्जितोध्वर्गकरोटि-निकृन्तनाथ
योगाय योगनमिताय नमः शिवाय॥५॥
संसार-सृष्टिघटना-परिवर्तनाय
रक्षःपिशाचगण-सिद्धसमाकुलाय।
सिद्धोरग-ग्रहगणेन्द्र-निषेविताय
शार्दूलचर्मवसनाय नमः शिवाय॥६॥

भस्माङ्गरागकृत-रूपमनोहराय
सौम्यावदातवनमाश्रितमाश्रिताय।
गौरीकटाक्षनयनार्ध-निरीक्षणाय
गोक्षीरधारधवलाय नमः शिवाय॥७॥
आदित्य-सोम-वरुणानिल-सेविताय
यज्ञाग्निहोत्रवर-धूम-निकेतनाय।
ऋक्-सामवेद-मुनिभिः स्तुतिसंयुताय
गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय॥८॥
शिवाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥९॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिववाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

■

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीचहीं, राम प्रेम पुर छाइ॥

घर करने से (गृहस्थी में रहने से) अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है और घर छोड़ने से (संन्यास ग्रहण करने से) यहाँ का घर (गृहस्थी) नष्ट होता है। अतएव तू घर और वन के बीच में ही (अर्थात् घर ही में गृहत्यागी की भाँति रह कर) श्रीराम जी के प्रेम की पुरी बसा।

दोहावली-गोस्वामी तुलसीदास - २५६

कबीर इस संसार का झूठा माया-मोह।
जिहि घर जिता बंधावणा, तिहि घर तिता अंदोह॥

संसार को अपना समझना और उसके प्रति लगाव रखना सब व्यर्थ का झंझट है। जिस स्थान के प्रति जितना ही अधिक मोह करते हैं, उसको छोड़ते हुए उतना ही दुःख होता है।

कबीरदास - माया कौ अंग - २८

श्रीनाथजी का स्तवन

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः॥
मुक्ता लुठन्ति पादाग्रे नखाग्रे जीवजातयः।
मुक्तामुक्तगतेर्मुक्तः सर्वत्र रमते स्थिरः॥
वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णुस्तथैव च।
मध्ये नाथः परं ज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम्॥

जिनकी बायीं ओर निर्गुणस्वरूप (ब्रह्म) और दाहिनी ओर अद्भुत निजाशक्ति इच्छाशक्ति (परमेश्वरी पराम्बा महामाया) विराजमान हैं और बीच में जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार-द्वन्द्वातीत (अलख निरञ्जन-द्वैताद्वैतविवर्जितस्वरूप) विद्यमान हैं, उन श्रीनाथ (आदिब्रह्म, आदिनाथ परमेश्वर) को नमस्कार है।

(संसार के विषय-भोगों में अनासक्त होकर आत्मचिन्तन करते हुए निवृत्तिमार्ग का वरण कर भवसागर से पार उतर कर कर्मफल के बन्धन से परे होकर) आत्मज्ञान में स्थित मुक्त, असंख्य जीव श्रीनाथजी के चरणदेश में नखों के अग्र भाग में लोटते रहते हैं, (श्रीनाथजी) स्वरूप-चिन्तन में तत्पर हैं पर, अमुक्त और मुक्त, दोनों तरह की द्वन्द्वात्मक स्थिति से परे जीवात्मा तो साक्षात् नाथस्वरूप की ही प्राप्ति कर लेता है, परम कैवल्यरूप साक्षात् श्री (आदि) नाथ ही हो जाता है।

जिसकी बायीं ओर (कल्याणस्वरूप शिव) शम्भु और दाहिनी ओर (विश्वव्यापक) विष्णु विराजमान हैं और मध्य भाग में परमज्योतिस्वरूप वे (अलख निरञ्जन परमेश्वर) श्रीनाथ ही विद्यमान हैं, वहीं श्रीनाथस्वरूप ज्योति (हमारे हृदय में स्थित अज्ञान-) अन्धकार का नाश (हरण) करती है- हमारे हृदय में आत्मस्वरूप की प्रकाशिका है।

(गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह : मंगलश्लोक)

■

---

*पूर्व प्राचार्य, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

योगामृत

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

दुःख की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

और कछुआ सब ओर से अपने अङ्गों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है। (ऐसा समझना चाहिए)

विषया विनिवर्तन्ते निराहास्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

(श्रीमद्भगवदगीता- २।५६,५७,५८,५९)

■

गोरखबानी

सीषि सीषि बिसाह्या बुरा। सुपिनैं मैं धन पाया पड़ा।
परषि परषि लै आगैं धरा। नाथ कहै पूता षोटा न षरा॥१५४॥

साधना में सिद्धि केवल सीख या सुन कर नहीं पायी जा सकती। वह तो आत्मानुभूतिजन्य है। जिस तरह स्वप्न में द्रष्टा धन की राशि देखता है और द्रव्य उसके नेत्रों के सामने एकत्र रहता है पर, वह असत् है। आँख खुलने पर वह धन अदृश्य हो जाता है, व्यर्थ सिद्ध होता है, ठीक उसी तरह ज्ञाननेत्र के खुल जाने पर, शास्त्र और ग्रन्थादि के शब्दों का कोई महत्त्व नहीं रहता, क्योंकि वह वस्तुतत्त्व है ही नहीं। न तो यह सत्य है और न खोटा ही है, क्योंकि वास्तविक ज्ञान (धन) है, ही नहीं। ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान का शब्द तो एक निकम्मा सौदा है, व्यर्थ की खरीद है।

आओ देवी बैसो। द्वादिस अंगुल पैसो।
पैसत पैसत होइ सुष। तब जनम मरन का जाइ दुष॥१५५॥

(गोरखनाथ जी का कथन है) हे देवि कुण्डलिनी। द्वादश अंगुल प्राणुवायु को वहन करने वाली सुषुम्ना नाड़ी में अपने जागरत रूप में प्रवेश करके चक्रों के स्थान से ऊर्ध्वमुख होते हुए सहस्रार में परमशिव में मिल जाओ। इस मिलन से परमानन्द की प्राप्ति होती है और योगी (जीवात्मा) साधना में सिद्धि लाभ कर आवागमन (जन्म लेने और पार्थिव शरीर के मरने) के बन्धन से मुक्त होकर परमशून्य कैवल्यपद मोक्षस्वरूप अलखनिरंजन तत्त्व में संस्थित हो जाता है।

■

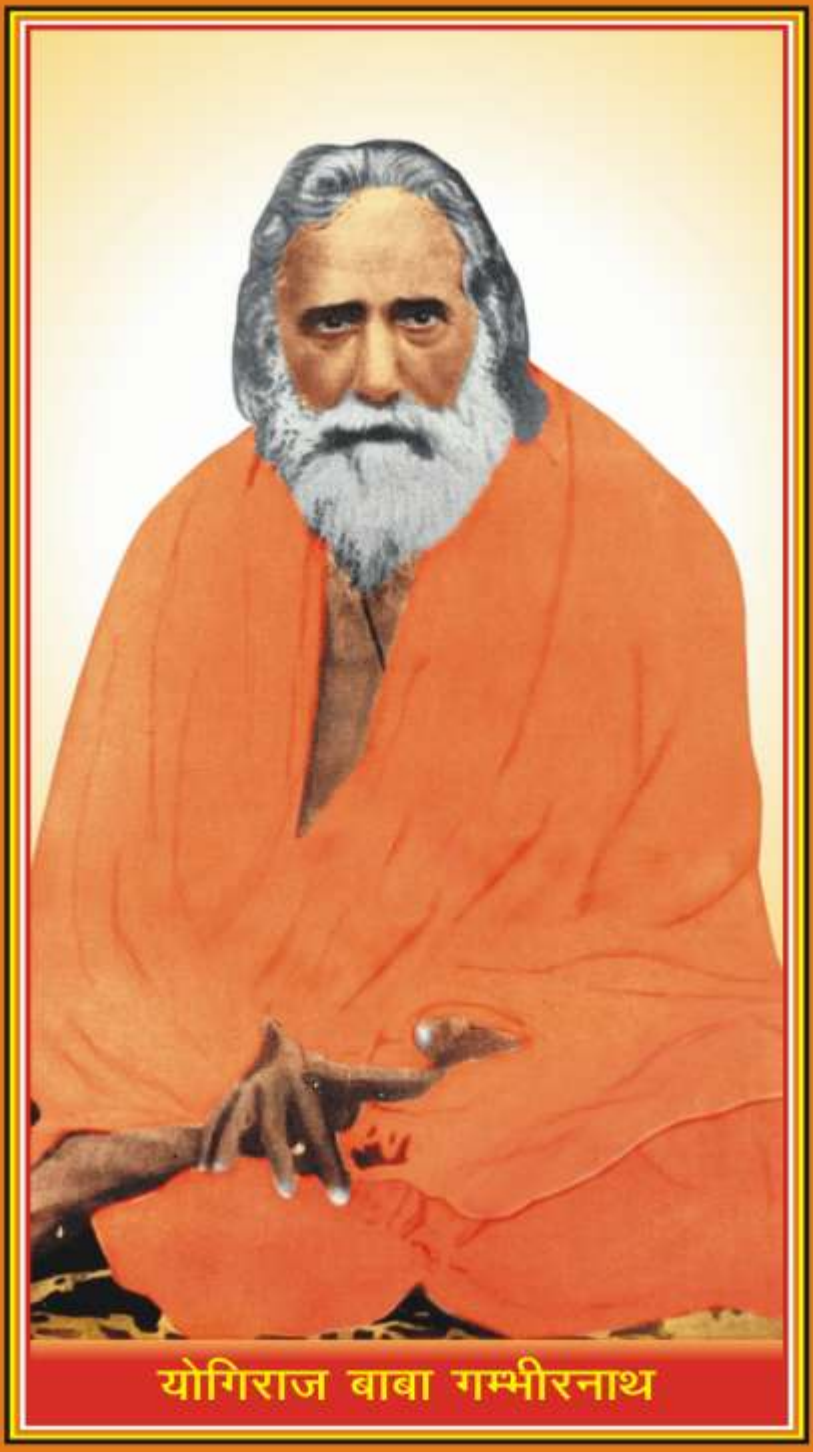

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

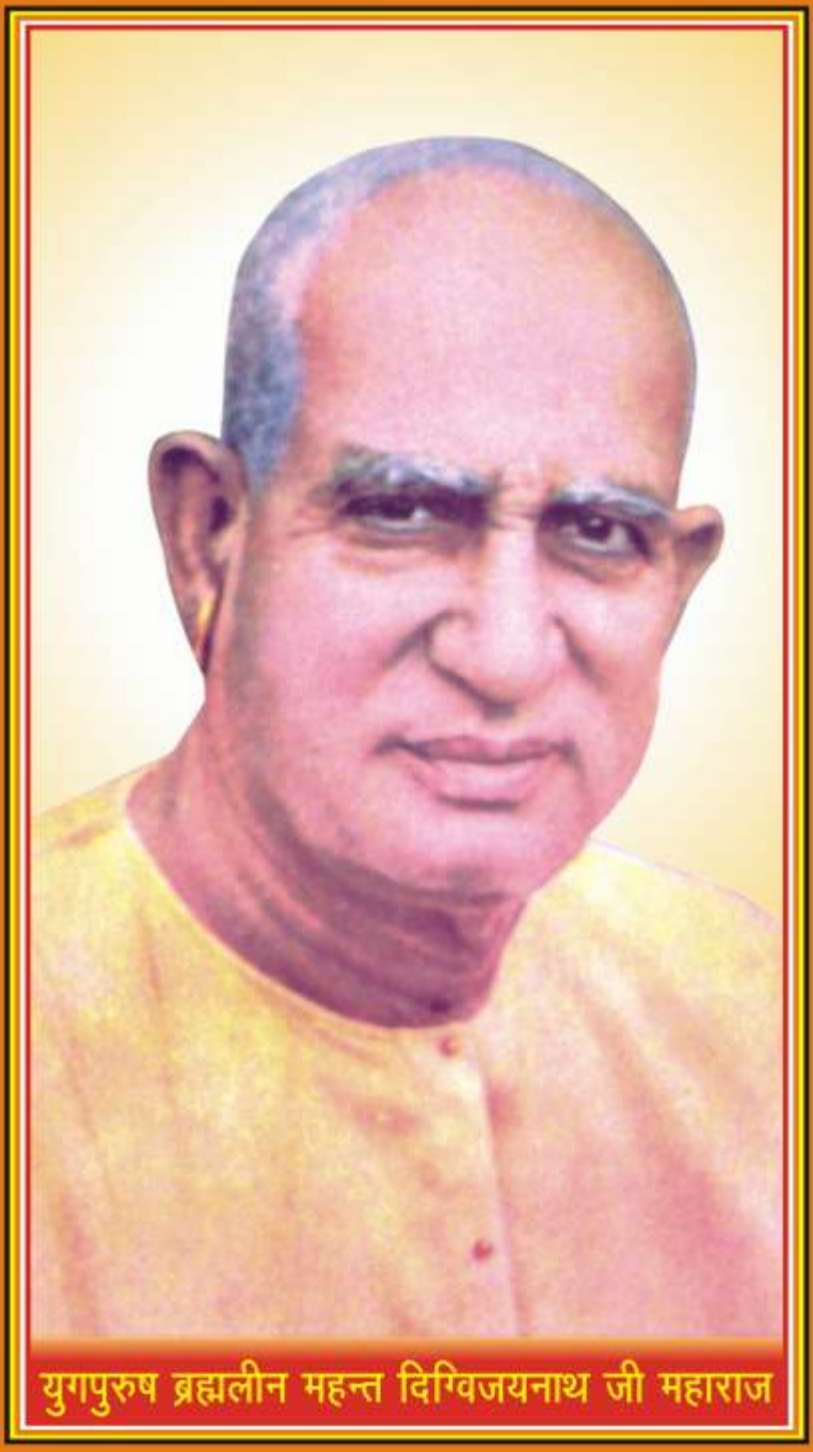

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

अमनस्क योग-साधना

योगी आदित्यनाथ*

योग के महान् आचार्यों ने योग को दो भागों में विभक्त किया है। इसमें प्रथम मार्ग पिपीलिका-मार्ग है जिसमें हठयोग आदि की साधना आती है। दूसरा मार्ग विहंगम मार्ग है, जिसमें नाद अनुसंधान तथा अमनस्क साधना महत्त्वपूर्ण है। पिपीलिका योग साधना की अपेक्षा विहंगम योग साधना श्रेष्ठ मानी गयी है। विहंगम योग साधना श्रेष्ठ होने पर भी पिपीलिका योग साधक के लिए उपादेय नहीं है। वैसे ही पिपीलिका योग साधना अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी में गिना जाने पर भी साधारण योगाभ्यासी के लिए वही श्रेष्ठ है। पिपीलिका योग-साधना में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि सहायक होते हैं एवं सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को प्रबुद्ध कर और उस जाग्रत् शक्ति के द्वारा मनुष्य-देह में स्थित छह शक्ति केन्द्रों का भेदन कर ऊपर उत्थित होना पड़ता है। उसके बाद सहस्रार में पहुँचने के लिए प्रयत्न आवश्यक होता है। पिण्ड से ब्रह्माण्ड में प्रवेश करना ही इस योग का उद्देश्य है। आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित बिन्दु का भेदन करके ही पिण्ड अर्थात् व्यष्टिदेह से ब्रह्माण्ड में अर्थात् समष्टिदेह में प्रवेश करना होता है। पिपीलिका योग-साधना में किसी अवलम्बन की मदद से साधक शनैः-शनैः अग्रसर होता है। परन्तु विहंगम योग साधना में निरालम्ब आकाश-मार्ग में मन की मौज से स्वेच्छानुसार अग्रसर होता है। साधक जब शून्य गगन में विचरण करता है और निरन्तर अमृत-पान करता है, तब देह-पिण्ड से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं रह जाता है। जब जीव देहात्मबोध से आवृत्त होकर अपने को भूल गया है एवं इड़ा और पिंगला-मार्ग में श्वास-प्रश्वास के साथ निरन्तर संचार कर रहा है। कुण्डलिनी के उद्‌बुद्ध हुए बिना जीव की यह आत्म विस्मृति हट नहीं सकती। जब मन और प्राण को एकरस करके जीव सुषुम्ना मार्ग में अग्रसर होता है, तब काल की गति अवरुद्ध हो जाती है और जीव अपने बल से एक-एक चक्र को प्राप्त कर और उसका अतिक्रमण कर क्रमशः एक के बाद दूसरे चक्र को आयत्त करता है। इस

*गोरक्षपीठाधीश्वर, श्रीगोरक्षपीठ, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर; मुख्यमंत्री-उत्तर प्रदेश

प्रकार प्रत्येक चक्र से ही वह एक बार बिन्दु में प्रवेश करता है। तदुपरान्त बिन्दुभेद हो जाने पर उस चक्र का त्याग कर फिर दूसरे चक्र में प्रवेश करता है। प्रत्येक चक्र का मध्यबिन्दु ही उस चक्र का केन्द्र है। इसलिए ज्ञान की यही निर्विकल्प भूमि है। किन्तु निर्विकल्प होने पर भी उसमें विकल्प का बीज सूक्ष्मरूप में रहता है। जागतिक विषय-प्रपञ्च और योग-साधना के बाह्य अंगों से मन को तटस्थ और उदासीन रखने तथा मन को पूर्णरूप से वश में करके अथवा लय करके शून्यपद ब्रह्मरन्ध्र में स्थित करना मन की उन्मनी अवस्था कही जाती है। मन का सहज स्वाभाविक उन्मनीकरण ही 'अमनस्क योग' कहलाता है। यह राजयोग सिद्धि की चरम अवस्था है। चित्त की चंचलता पर नियंत्रण प्राप्त करना योग साधना की सिद्धि का परम उद्देश्य है। जब तक चित्त चंचल है, तब तक प्राणशक्ति पर नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सकता अर्थात् चित्त की चंचलता और प्राण शक्ति पर नियन्त्रण बिना योग साधना के क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। इसीलिए चित्त की चंचलता का निरोध ही मन की वृत्तियों का निरोध है और यही अमनस्क भाव की उपलब्धि है। मन की शक्ति अप्रमेय है। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने गोरखवाणी में मन को साक्षात् शक्ति एवं शिवस्वरूप माना है। जिस साधक का नियंत्रण मन की चंचल वृत्तियों पर हो जाए तो वह तीनों लोकों के सम्बन्ध में सब कुछ जानने की शक्ति प्राप्त कर सकता है। गोरखवाणी में उन्होंने कहा है-

यहु मन सकती यहु मन सीव।
यहु मन पाँच तत्त का जीव॥
यहु मन ले जै उनमन रहै।
तौ तीनि लोक की बाताँ कहै।

(गोरखवाणी)

मन को शून्य ब्रह्मरन्ध्र में स्थित करना ही साधक की उन्मनी अवस्था है। उन्मनी अवस्था से मन पुनः वापस नहीं आ सकता। इस अवस्था में चन्द्रस्राव का पान करने पर पिण्ड में स्थित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का तात्विक ज्ञान साधक की बुद्धि में अभिव्यक्त हो जाता है। मन के स्वरूप के सम्बन्ध

में योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी ने कहा है कि केवल समाहित चित्त योगियों की ही चांचल्य-निवृत्ति होती है, संकल्प-विकल्प ही मन है। मन नाम की कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। संकल्प-विकल्प के प्रवाह को ही मन कहा जाता है। ये तत्त्वप्रकाश में बाधा डालते हैं। साधक जब तक योग में समाहित चित्त होकर अमरत्व नहीं प्राप्त कर लेता है, तब तक संकल्प-विकल्प से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। संकल्प-विकल्प का नाश ही मनोनाश होता है और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। संकल्प-विकल्प की लयावस्था ही मन की अमनस्कता है। मन की चांचल्य वृत्ति के सम्बन्ध में सिद्ध कृष्णपाद ने नाथ सिद्धों की बानियों में कहा है-

समदां की लहरयाँ पार जुपाइला।
मानवा की लहरयाँ पार न आवै रै लो। ।

समुद्र की अनन्तता का अन्त मिल सकता है, उसकी लहरों के पार जाना सम्भव है, पर मन की रहस्यात्मकता को पार पाना कठिन है। मन की वृत्तियों का लय होने पर ही अंजनरहित निरंजनपद की प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है। मन बड़ा ही चंचल है, इसका निग्रह बहुत कठिन है, यह क्षण-क्षण में अस्थिर होता रहता है। महायोगी गुरु गोरखनाथ जी इस सम्बन्ध में कहते हैं कि मन का निग्रह करना आवश्यक है। समस्त सृष्टि, उसके अधिष्ठाता और अधिष्ठात्री तथा उसमें जन्म लेने वाले और मरने वाले शरीरधारी जीव सभी इसी मन के ही स्वरूप, अरूप और रूप हैं। इस मन को न तो रोकना चाहिए और न चंचल होने देना चाहिए। जहाँ से मन की चंचलता आरम्भ होती है, उसे वहीं वापस ले जाना चाहिए। अमनस्क योग साधना के लिए यह आवश्यक है कि साधक को किसी भी विषयवस्तु का चिन्तन न करते हुए सहज स्वरूप में रहने से मन, वाणी और शरीर में लेशमात्र भी संक्षोभ का अनुभव नहीं करना चाहिए। जब तक संक्षोभ है, चिन्तन और संकल्प की कल्पना है, तब तक अमनस्क स्थिति की प्राप्ति नहीं हो सकती और न तो तत्त्व साक्षात्कार ही सम्भव है। अमनस्क योग की साधना अन्य योग साधनाओं की तरह ही क्रिया सापेक्ष है। निरन्तर योगाभ्यास से ही मन स्थिर और उन्मन होता है। नाथ योग साधना में यद्यपि

हठयोग की आवश्यकता पर बल दिया है तथापि अन्तरंग साधना को ही यौगिक सिद्धि अथवा तत्त्वप्राप्ति की आधारशिला स्वीकार किया गया है और उसकी अन्तिम स्थिति मनोलय की महावस्था या उन्मनी बतायी गयी है। हठयोग साधना में प्राणों की स्थिरता से मन की चंचलता को नियंत्रित किया जाता है जिसके द्वारा साधक उन्मनी अवस्था को प्राप्त करता है और यही राजयोग का चरमफल भी है। योग साधना में तत्त्व साक्षात्कार के लिए हठयोग और राजयोग दोनों की परम आवश्यकता है–

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः।
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत्॥

(हठयोग प्रदीपिका)

(क्रमशः)

योगी द्वारा परमपद की प्राप्ति

अधोन्मीलितलोचनः स्थिरमना नासाग्रदत्तेक्षण
श्चन्द्रार्कावपि लीनतामुपनयन्निष्पदं भावेन यः।
ज्योतिरूपमशेषबीजमखिलं देदीप्यमानं परं
तत्त्वं तत्पदमेति वस्तु परमं किमत्राधिकम्॥

अर्द्ध उन्मीलित नेत्र, स्थिर मन और नासिका के अग्र भाग में स्थित दृष्टि वाला, चन्द्र–सूर्य को लीन करता हुआ निस्पन्द भाव से अत्यन्त देदीप्यमान ज्योतिस्वरूप, अशेष, अखिल विश्व के बीज रूप परमतत्त्व–परमपद प्राप्त कर लेता है। इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाय।

(हठयोग प्रदीपिका ४।४२)

योगसिद्धि

सन्त ज्ञानेश्वर

संसार में योगी और संन्यासी एक ही हैं। 'जो संन्यासी है, वही योगी है'– इस एकवाक्यता की पताका अनेक शास्त्रों ने फहरायी है, उन्होंने अनुभव–रूपी तुला पर यह सत्य निश्चित किया है कि त्याग किये हुए संकल्प का लोप होता है, वही योगसाररूपी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। यदि योगरूपी पर्वत के शिखर पर पहुँचना है तो कर्ममार्गरूपी सोपान नहीं छोड़ना चाहिए। इस मार्ग के द्वारा यमनियम रूपी आधार–भूमि पर आसनरूपी पगडण्डी पकड़ कर प्राणायाम के कगार से ऊपर चढ़ना चाहिए, प्रत्याहाररूपी मध्यभाग पर बुद्धि के भी पैर फिसलते हैं, जिसका आक्रमण होते समय हठयोगी भी गिरने के भय से अपनी प्रतिज्ञाओं का परित्याग कर देते हैं । अभ्यास के बल से प्रत्याहार के निरालम्ब आकाश में भी धीरे–धीरे वैराग्य का आश्रय प्राप्त हो जायेगा। वायुरूपी (प्राणायाम) घोड़े पर सवार होकर धारणा के मार्ग से चलते रहना चाहिए, जब तक ध्यान की सीमा के बाहर न हो जाय। ..... ब्रह्मानन्द की एकता प्राप्त होने से साध्य और साधन एकात्म हो जायेंगे।

सब से पहले एक स्थान ऐसा ढूँढ़ना चाहिए, जहाँ समाधान की इच्छा से बैठते ही उठने की इच्छा न हो, जिसे देखते ही वैराग्य दूना बढ़ जाय . .... वहाँ अमृत के समान जड़ से मीठे फलोंवाले वृक्ष हों, डग–डग पर पानी हो, जो सदा निर्मल रहे। घाम थोड़ा ही तपता हो, शीतल पवन चलता हो। कहीं शब्द न होता हो, वन सघन हो।..... वहाँ कोई गुप्त मठ अथवा शिवालय हो। प्राय: एकान्त में ही बैठना चाहिए। वहाँ इस प्रकार आसन लगाना चाहिए कि ऊपर मृगचर्म हो, बीच में धुला और तह किया हुआ वस्त्र हो। नीचे कुश एक–में–एक मिले बिछाये जाँय। आसन सम होना चाहिए। योगी को एकाग्र अन्त:करण हित आसन पर बैठना चाहिए, जँघा को पिंडली से मिला कर पांव के तलुए एक–पर–एक स्थिर कर गुदा स्थान

के मूल में जोर से दबाना चाहिए, बायाँ पैर ऊपर ही रहना चाहिए ..... सम्पूर्ण शरीर का भार एड़ी पर संतुलित रखना चाहिए। यह मूलबन्ध है। दृष्टि स्थिर कर नासाग्र रख कर जालन्धर बन्ध लगाना चाहिए, इसमें ठोड़ी कण्ठ के नीचे के गड्ढे में जम जाती है, हृदय पर दबाव डालती है। नाभि के नीचे स्वाधिष्ठान चक्र में उड्डियान बन्ध लगाना चाहिए, नाभि ऊपर उठती, पेट पीठ की ओर प्रविष्ट होता जाता है और हृदय-कमल विकसित होता है। अपानवायु मूलबन्ध के द्वारा अवरुद्ध होने पर पीछे लौटती है, मणिपूर नाभि कमल में गरजने लगती है, कोठों में सञ्चार सारे शरीर में फैलता है और प्राणवायु के योग से जहाँ-का-तहाँ सूख जाता है।

तपाये हुए मोम के साँचे का मोम निकल जाने पर जिस तरह वह उसमें डाले हुए रस का ही बना हुआ रह जाता है, उसी तरह शरीर-रूप से मानो कान्ति ही अवतार लेती है, ऊपर से त्वचारूपी ओढ़नी ओढ़ लेती है। जिस तरह सूर्य मेघरूपी घूँघट काढ़े रहता है और मेघ के निकल जाने पर तेजस्वी दीखता है, उसी तरह ऊपर से शरीर का त्वचारूपी पपड़ा भूसे की तरह झड़ जाता है, अवयव-कान्ति की शोभा ऐसी दीखती है, मानो वह स्फटिक की ही हो अथवा रत्नरूपी बीज में अंकुर निकले हों अथवा सन्ध्या-काल के आकाश का रंग निकाल कर वह शरीर बनाया गया हो अथवा आत्मज्योति का लिंग स्वच्छ कर रखा गया हो अथवा यह शरीर कुंकुम से भरा हो, आत्मरस से ढला हो अथवा मैं समझता हूँ कि वह शान्ति का मूर्तिमान् स्वरूप हो-कुण्डलिनी जब चन्द्रामृत पीती है, तब शरीर ऐसा हो जाता है। कृतान्त भी उस देहाकृति से भय करता है, बुढ़ापा पीछे हट जाता है, यौवन की गाँठ खुल जाती है, बालदशा प्रकट हो जाती है, उस शरीर में ऐसे नये और उत्तम नख निकलते हैं, मानो स्वर्णवृक्ष के पल्लवों में नित्य नवीन रत्नों की कलियाँ निकली हों। दाँत नये हो जाते हैं, मानों दोनों ओर हीरे की पंक्ति हो। हथेली और तलुवे रक्त कमल के समान हो जाते हैं। नेत्र अत्यन्त स्वच्छ हो जाते हैं। शरीर स्वर्ण का हो जाता है, पर वायु का लघुत्व धारण करता है, क्योंकि उसमें पृथ्वी और जल का अंश नहीं रह जाता है।

प्राण का हाथ पकड़ कर, हृदयाकाश की सीढ़ी बनाकर सुषुम्ना नाड़ी के सहारे हृदय में पहुँची हुई जगदम्ब कुण्डलिनी, जो चैतन्यरूप चक्रवर्ती की शोभा है, जिसने जगद्बीज ओंकार के अंकुररूप जीव पर छाया की है, जो निराकार ब्रह्म का साकार शरीर है, जो परमात्मा शिव का सम्पुट है, जो ओंकार की जन्म-भूमि है, जब हृदय में प्रवेश करती है, तब वह अनाहत ध्वनि करने लगती है– जब तक पवनतत्त्व का नाश नहीं होता, तब तक आकाश में वाचा होती है, इसलिए वह गरजता है। जब अनाहतरूपी मेघ के कारण आकाश गरजने लगता है, तब सहज ही ब्रह्मरन्ध्र की खिड़की खुल जाती है। वह मल को निकाल फेंकती है, दोष शान्त करती है– वह व्याधि प्रकट कर उसे नष्ट भी कर देती है। आसन की उष्णता कुण्डलिनी को जागरत करती है। जिस तरह किसी नागिन का सपोला कुंकुम में नहाया हो और गिण्डी मारकर सो रहा हो, उसी तरह यह छोटी-सी-कुण्डलिनी साढ़े तीन गिण्डी मारकर नीचे की ओर मुख कर सोयी रहती है। विद्युत् के बने कंकण अथवा अग्नि की ज्वाला के मण्डल अथवा सोने के पासे की-सी उत्तम बँधी और कसी हुई कुण्डलिनी वज्रासन के दबाव से जाग जाती है। लगता है कोई नक्षत्र उलट पड़ा हो, सूर्य का आसन छूट गया हो अथवा चारों ओर तेज के बीज से अंकुर फूटे हों, इस तरह अँगड़ाई लेती उठी हुई नाभि-स्थान पर यह दीख पड़ती है। जागने पर उसे बड़ी भूख लगती है, ठीक ऊपर की ओर मुंह फाड़ती है, हृदयकमल के नीचे का पवन चपेट लेती है। ऊपर-नीचे मुख की ज्वाला फैलाकर मांस को ग्रास बना लेती है, प्रत्येक अवयव की गाँठों को खोल लेती है, अधोभाग भी नहीं छोड़ती है, नखों का सत्व निकाल लेती है, हड्डियों की नलियों का रस निकालती है, नसों के समूह को धो डालती है, त्वचा धोकर हड्डी के ढाँचे से जोड़ देती है, वह प्यासी कुण्डलिनी सप्त धातुओं के समुद्र का घूँट पी लेती है, जिससे शरीर का प्रत्येक भाग शुष्क हो जाता है, नासारन्ध्र से बारह अंगुल तक बाहर निकलनेवाली वायु को पीछे हटाकर भीतर प्रवेश करती है, तब नीचे की वायु ऊपर चढ़ती है और ऊपर की वायु नीचे उतरती है। दोनों वायुओं का मेल होने पर केवल चक्र ही शेष रहते हैं। इस तरह कुण्डलिनी शरीर

की पृथ्वीमय धातु खाकर जल का अंश भी पोंछ डालती है। दोनों महाभूतों को खाकर वह तृप्त होती है और सुषुम्ना नाड़ी में शान्त हो जाती है। तृप्ति के संतोष से वह जो विष मुख से उगलती है, प्राण–वायु उस अमृत से जीवन धारण करती है। भीतर से वह विष अग्निरूप होकर निकलता है, परन्तु बाहर वह शीतल होता है, गले के अवयव दृढ़ होने लगते हैं, नाड़ियों के मार्ग बन्द हो गये हैं, नवों प्रकार की वायु का चलना बन्द हो गया है। इड़ा–पिंगला नाड़ियाँ एक में मिल गयी हैं, तीन गाँठे छूट गयी हैं और चक्रों की छः कलियाँ खिल गयी हैं। चन्द्र और सूर्य नामक वायु का दीपक से खोजने पर भी पता नहीं चलता–ऊपर से चन्द्रामृत का सरोवर धीरे से कुण्डलिनी के मुख में गिरता है, इससे नली में रस भर जाता है, वह जो कमल–गर्भ के आकार के समान है, दूसरा महदाकाश है, जहाँ चौतन्य निवास करता है, उस हृदय रूपी भुवन में कुण्डलिनी अपना तेज छोड़कर केवल प्राणरूप रहती है, मानो किसी पवन की पुतली ने अपनी ओढ़ी हुई सोने की साड़ी उतार कर अलग रख दी हो, हृदयकमल कुण्डलिनी ऐसी दीखती है, मानो सोनेकी शलाका हो। उस समय नाद, बिन्दु, कला, ज्योति नहीं रहते। मन का वश करना, पवन का आश्रय करना या ध्यान का अभ्यास करना आदि बातें नहीं रह जाती हैं। पिण्ड–से–पिण्ड का ग्रास–अभिप्राय का ही महाविष्णु ने (भगवद्गीता में इस तरह) वर्णन किया।

शक्ति के तेज का लोप हो जाने पर देह का रूप मिट जाता है, योगी इतना सूक्ष्म हो जाता है कि आँख में छिप सकता है। ऐसे तो वह पहले के ही समान अवयवसम्पन्न रहता है, पर ऐसा दीखता है, मानो वायु का ही बना है। जब उसका शरीर इस प्रकार हो जाता है, तब उसे खेचर कहते हैं। ऐसा योगी कहीं से भी निकल जाय तो उसके पैरों की जो रेखा बन जाती है, वहाँ जगह–जगह अणिमादि सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं–हृदय में पृथ्वीतत्त्व को जल गला देता है, जल को तेज सुखा देता है, तेज को वायुतत्त्व बुझा देता है, इसके अनन्तर केवल वायुतत्त्व ही रह जाता है, पर शरीर का आधार लिये रहता है। कुछ समय के बाद वह भी आकाश में जा मिलता है, उस समय उसे कुण्डलिनी नाम के बदले वायुनाम प्राप्त होता है। जब

तक कुण्डलिनी ब्रह्म में नहीं जा मिलती, तब तक उसकी शक्ति बनी रहती है। वह सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर गगनरूपी पहाड़ी पर जा पहुँचती है, ओंकार की पीठ पर पैर रखते हुए शीघ्रता से पश्यंतीरूपी सीढ़ीपर चढ़कर ओंकार की अर्ध मात्रा तक आकाशतत्त्व के हृदय में जा मिलती है, फिर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित रह कर सोऽहं बाँह फैलाकर परब्रह्म से मिल आती है। उस समय बीच के महाभूतों का परदा फट जाता है, उस ब्रह्मानन्द में गगनसमेत सब कुछ विलीन हो जाता है। पिण्ड के मिस से मानों ब्रह्म ही ब्रह्मपद में उसी तरह प्रवेश करता है, जिस तरह समुद्र मेघों के मुख से निकल कर नदी में बह कर फिर अपने-आप में ही मिल जाता है। यह विवेचना करने के लिये भी कोई नहीं बचता कि दूसरा कोई था या पहले से एक ही वस्तु है। गगन-में गगन के लीन होने का जिसे-अनुभव होता है, वही पुरुष सिद्ध है।

(ज्ञानेश्वरी ६। १-१५)

(योगवाणी अप्रैल १९७९ से)

■

भवानी का ध्यान

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम्॥

मैं अणिमादि सिद्धिमयी किरणों से आवृत्त भवानी का ध्यान करता हूँ, जिनके शरीर का रंग लाल है, नेत्र में करुणा और हाथ में पाश, अंकुश, बाण और धनुष हैं।

(दुर्गासप्तशती अ. ८ । मंगलाचरण)

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी*

प्रलयकाल में समस्त तत्त्वों को निःशेषभाव से आत्मसात् करके शक्ति परम शिव में तत्त्वरूपा होकर अवस्थान करती है। इसीलिए ''वामकेश्वरतंत्र'' में भगवती शक्ति को ''कवलीकृतानिःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी'' कहा गया है। (४।५) इस अवस्था में शिव में कार्य-कारण का कर्तृत्व नहीं होता अर्थात् कार्य-कारण के चक्र के संचालन-कर्म से विरत हो जाते हैं। वे कुल और अकुल के भेद से परे हो जाते हैं और अव्यक्तावस्था में विराजमान रहते हैं। इसीलिए इसी अवस्था में उन्हें शास्त्रकारगण ''स्वयं' कह कर स्मरण करते हैं।

कार्यकारणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम्।
अव्यक्तं परमं तत्त्वं स्वयं नाम तदा भवेत्॥

(सि.सि.स. १।४)

इस परम शिव को जब सृष्टि करने की इच्छा होती है तो इच्छायुक्त होने के कारण उन्हें सगुण शिव कहा जाता है। इस अवस्था में परम शिव से एक ही साथ दो तत्त्व उत्पन्न होते है– शिव और शक्ति। वस्तुतः इन दोनों में कोई भेद नहीं है। यह शक्ति पाँच अवस्थाओं से गुजरती हुई स्फुरित होती है। (१) परम शिव की अवस्थामात्र धर्म से युक्त, स्फुरित होने की पूर्ववर्ती और प्रायः स्फुरित होने की उपक्रान्त अवस्था का नाम ''निजा'' है। इस अवस्था में शिव अपने अव्यक्त रूप में रहते हुए भी स्फुरणोन्मुखी शक्ति से विशिष्ट होकर रहा करते हैं। शिव की इस अवस्था का नाम अपर पद्म है। धीरे-धीरे शक्ति क्रमशः (२) स्फुरण की ओर उन्मुख होती है, (३) स्पन्दित होती है (४) सूक्ष्म अहन्ता (...मैं...पन अर्थात् अलगाव का भाव) से युक्त होती है और अन्त में (५) चेतनशील होकर अपने अलगाव के बारे में पूर्ण सचेत हो जाती है। ये अवस्थायें क्रमशः परा, अपरा सूक्ष्मा और कुण्डली कही जाती हैं।

---

*ख्यातिलब्ध निबन्धकार, दुबे का छपरा, बलिया, उत्तर प्रदेश

निजा पराऽपरा सूक्ष्मा कुण्डली तासु पञ्चधा।
शक्तिचक्रक्रमेणैव जातः पिण्डः परः शिवे॥

(सिद्धसिद्धान्तसंग्रह १।१३)

इन अवस्थाओं में शिव भी क्रमशः परम, शून्य, निरंजन और परमात्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं।

ततौऽस्तितापूर्वमर्चिर्मात्रं स्यादपरं परम्।
तत्स्वसंवेदनाभासमुत्पन्नं परमं पदम्॥
स्वेच्छामात्रं ततः शून्यं सत्तामात्रं निरञ्जनम्।
तस्मात्ततः स्वसाक्षादभूः परमात्मपदं मतम्॥

(सिद्धसिद्धान्तसंग्रह १।१४-१५)

इस प्रकार निखिलानन्दसन्दोह शिव पाँच अवस्थाओं से गुजरते हुए प्रथम तत्त्व परमात्मा या सगुण शिव के रूप में प्रकट होते हैं और शक्ति भी पाँच अवस्थाओं से अग्रसर होती हुई द्वितीय तत्त्व कुण्डली या कुण्डलिनी के रूप में प्रादुर्भुत हुई। यही कुण्डली समस्त विश्व में व्याप्त शक्ति है। इसी की इच्छा से इसी की सहायता से, शिव इस विश्व-प्रपंच की उत्पत्ति, पालन और विलय में समर्थ होते हैं। यही परमात्मा और कुण्डली-शिव और शक्ति, प्रथम दो सूक्ष्मतम तत्त्व हैं। इनसे ही अत्यन्त सूक्ष्म 'परपिण्ड' की उत्पत्ति हुई है।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि वैदान्तिक लोग भी चित्तस्वरूप ब्रह्म की शक्ति, जिसे वे ''माया'' कहते हैं, मानते हैं पर यहाँ शक्ति की जो कल्पना है, वह वैदान्तिक कल्पना से भिन्न है। यहाँ कुण्डली या शक्ति को ''चिच्छीला'' (चिच्छीला कुण्डलिन्यतः– सि.सि.स. १।६) और चिद्रूपिणी माना गया है। यह चिच्छोक्ति-अनन्तरूपा और अनन्तशक्तिस्वरूपा है। जगत् इसी शक्ति का परिणाम है और यही शक्ति जगत्रूप में परिणत होती है। इसी की सहायता से परम शिव सृष्टि-व्यापार के सँभालने में समर्थ होते हैं और इसीलिए ''वामकेश्वरतन्त्र' में स्वयं भगवान् शंकर ने ही कहा है कि हे परमेश्वरि, इस शक्ति से रहित होने पर शिव कुछ भी करने में असमर्थ हैं, इससे युक्त होकर ही वे कुछ करने में समर्थ होते हैं।

परो हि शक्तिरहितः शक्तः कर्तु न किञ्चन।
शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेत्॥

(वामकेश्वरतन्त्र ४/६)

इसके बाद कुण्डली अर्थात् समस्त विश्व में प्रव्याप्त शक्ति पृष्टिक्रम को अग्रसर करने के लिए क्रमशः स्थूलता की ओर अग्रसर होती है। इसके बाद तीन तत्त्व क्रमशः स्फुटित होते हैं। ये हैं– सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या। सदाशिव अहंप्रधान है और ईश्वर इदंप्रधान, शुद्धविद्या उभयप्रधान है। सृष्टि व्यापार को अग्रसर करने के लिए इस प्रकार अहन्ता की प्राप्ति पाँच अवस्थाओं के भीतर से होती है। इन अवस्थाओं को आनन्द कहते हैं। पाँच आनन्द हैं– परमानन्द, प्रबोध, चिदुदय, प्रकाश और सोऽहं। इन्हीं आनन्दों के भीतर से गुजरते हुए शिव क्रमशः ''जीव''-रूप की ओर अग्रसर होते हैं। 'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' में बताया गया है कि किस प्रकार परपिण्ड से आद्यपिण्ड, उससे साकार पिण्ड, उससे महासाकार पिण्ड, उससे प्राकृत-पिण्ड और उससे भी अन्त में गर्भ-पिण्ड उत्पन्न होता है। ये क्रमशः स्थूल से स्थूलतर होते जाते हैं। अन्तिम पिण्ड से स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ। ''सिद्धसिद्धान्तसंग्रह'' के प्रथमाध्याय की पुष्पिका में लिखा है कि यह ६ प्रकार की पिण्डोत्पत्ति है। परन्तु वस्तुतः उसमें कई प्रकार की पिण्डोत्पत्ति दी हुई है। यह विचारणीय ही रह जाता है कि ये छः पिण्ड वस्तु क्या है। महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ जी कविराज ने सिद्धसिद्धान्तसंग्रह की भूमिका में लिखा है कि यह ६ पिण्ड इस प्रकार हैं– १-पर या आद्य-पिण्ड २-साकार-पिण्ड ३-महासाकार-पिण्ड ४-प्राकृत-पिण्ड ५-अवलोकन-पिण्ड ६-गर्भ-पिण्ड

सिद्धसिद्धान्त-पद्धति के आधार पर सं. १८८१ में मारवाड़-नरेश महाराजा मानसिंह के राज्यकाल में २५ चित्र बनवाये गये थे। ये चित्र देशी कागज की बनी करीब ४ फुट लम्बी, १$\frac{१}{२}$ फुट चौड़ी और $\frac{२}{३०}$ इञ्च मोटी दफ्ती पर बने हैं और आज से सवा सौ वर्ष पहले के राजपूत कलम के उत्तम नमूने हैं। ये जोधपुर के राजकीय सरदार म्यूजियम में सुरक्षित हैं। सन् १९३५ ई. में पंडित विश्वेश्वरनाथ जी रेउ ने इन चित्रों का विवरण एक

छोटी-सी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कराया था। हम जिस बात की चर्चा यहाँ कर रहे हैं वह इन चित्रों के द्वारा स्पष्ट अधिक होगी। इस आशा से यहाँ उक्त विवरण पुस्तिका के कुछ चित्रों के परिचयों का संकलन किया जा रहा है। यह स्मरण रखना चाहिए कि सिद्धसिद्धान्तसंग्रह वस्तुतः इस पुस्तक का ही संक्षिप्त रूप है। मूल ग्रन्थ सिद्धसिद्धान्त-पद्धति ही है। दूसरा चित्र त्रिगुणात्मक आदिपिण्ड का बताया गया है। इसका विवरण इस प्रकार दिया हुआ है। (२) त्रिगुणात्मक आदि पिण्ड। आदि पिण्ड से (नील वर्ण) महाआकाश का, महाआकाश से धूम्र वर्ण महावायु का, महावायु से (रक्त वर्ण) महातेज का, महातेज से (श्वेत वर्ण) महा सलिल (जल) का और उससे (पीत वर्ण) महा पृथ्वी का उत्पन्न होना। इन पंचमहातत्त्वों से महासाकार पिण्ड का और उससे (१) शिव का उत्पन्न होना। इसी प्रकार आगे शिव से (२) भैरव का, भैरव से (३) श्रीकंठ का, श्रीकंठ से (४) सदाशिव का, सदाशिव से (५) ईश्वर का, ईश्वर से (६) रुप्र का, रुद्र से (७) विष्णु का, विष्णु से (८) ब्रह्मा का उत्पन्न होना। ब्रह्मा से नर-नारीरूप (९) प्रकृति-पिण्ड का उत्पन्न होना। तीसरे चित्र का विवरण इस प्रकार है। (३)- नर-नारी के संयोग से स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति। पिण्ड का रूप। ''सिद्धसिद्धान्तसंग्रह'' से और ''सिद्धसिद्धान्तपद्धति'' के आधार पर बने हुए इन चित्रों के विवरण से ऐसा जान पड़ता है कि प्रथम पिण्ड, पर-पिण्ड है या त्रिगुणातीत है और आदि या आद्य-पिण्ड वस्तुतः उसके बाद कर अवस्था का नाम है। फिर साकार पिण्ड और महासाकार पिण्ड भी अलग-अलग नहीं जान पड़ते। साकार पिण्ड को ही ग्रंथकार ने महासाकार पिण्ड कहा है। यदि यह बात ठीक है तो छः पिण्ड इस प्रकार हो सकते हैं- १-पर-पिण्ड २-आद्य-पिण्ड ३-साकार या महासाकार-पिण्ड ४-प्राकृत-पिण्ड ५-अवलोकन-पिण्ड ६-गर्भ-पिण्ड।

इन पिण्डों में परपिण्ड तो शिव और शक्ति के संयोग से उत्पन्न है। परवर्ती तीन तत्त्वों में आद्य-पिण्ड और माया और पंच कंचुकों से आच्छादित अहन्ता प्रधान पुरुष और इदन्ताप्रधान प्रकृति तक साकार तत्त्व है। महत्तत्त्व से पंचतन्मात्र तक प्राकृत पिण्ड और एकादश इन्द्रियों का अवलोकनपिण्ड

है। फिर गर्भोत्पन्न यह पंचभूतात्मक स्थूल शरीर गर्भ-पिण्ड है। इस प्रकार ३४ तत्त्वों के स्फुरण से इस पिण्डोत्पत्ति का सामंजस्य किया गया है। पुरुष और इदन्ताप्रधान प्रकृति तक साकार तत्त्व है। महत्त्व के पंचतन्मात्र तक प्राकृत पिण्ड और एकादश इन्द्रियों का अवलोकन पिण्ड है। फिर गर्भोत्पन्न यह पंचभूतात्मक स्थूल शरीर गर्भ-पिण्ड है। इस प्रकार ३६ तत्त्वों के स्फुरण से इस पिण्डोत्पत्ति का सामंजस्य किया गया है।

अब यह स्पष्ट है कि परशिव ही अपनी सिसृक्षारूपा शक्ति के कारण जगत् के रूप में बदल गये हैं। संसार में जो कुछ भी पिण्ड है, वह वस्तुतः उसी प्रक्रिया में से गुजरता हुआ बना है, जिस अवस्था में से समूचा ब्रह्माण्ड बना है। सबमें बे ही तत्त्व ज्यों-के-त्यों हैं। परन्तु सत्व, रज, तम, काल और जीव (अर्थात् प्राण-शक्ति) की अधिकता और न्यूनता के कारण उनमें भेद प्रतीत हो रहा है। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं को असत्य नहीं समझना चाहिए। वे सभी सत्य हैं। जितनी नाड़ियाँ या द्वार या आधार मनुष्य में हैं उतनी ही समस्त ब्रह्माण्ड में और उतनी ही ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु में है। भेद यही है कि सत्व, रज, तम, काल और जीव के आधिक्य और न्यूनत्ववश वे कहीं अविकसित हैं, कहीं अर्धविकसित हैं, कहीं पूर्ण विकसित हैं। इसीलिए गोरक्षमत में प्रथम सिद्धान्त यह है कि जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में है, वह सभी पिण्ड में है।

ब्रह्माण्डवर्त्ति यत्किञ्चित्तत्पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा।

(सिद्धसिद्धान्तसंग्रह ३।२)

(क्रमशः)

जब तक साधक में अपने सुख, आराम, मान, बड़ाई आदि की कामना है, तब तक उसका व्यक्तित्व नहीं मिटता और व्यक्तित्व मिटे बिना तत्त्व से अभिन्नता नहीं होती। जब हमारे अन्तःकरण में किसी प्रकार की कामना नहीं रहेगी, तब हमें भगवत्प्राप्ति की भारी इच्छा नहीं करनी पड़ेगी, प्रत्युत भगवान् स्वतः प्राप्त हो जायेंगे।

श्रद्धेय स्वामी रामसुखदास जी

उत्तर नाथयोगी

प्रो. रामदरश राय*

(गतांक से आगे)

अवेद्यनाथ एक नाथपन्थी योगी-साधक और गोरक्षपीठाधीश्वर मात्र नहीं, राष्ट्रसन्त और राजर्षि थे। उनका जितना संयमी सन्त-स्वभाव था उतना ही प्रबल लोकभाव और राजनयिक दूरदर्शी अनुमान भी। रामजन्मभूमि मुक्ति आन्दोलन के सर्वगुणी ऋषिनायक वही थे। आज अयोध्या की रामजन्मभूमि श्रद्धानिष्ठ हो उनकी अमर आत्मा का स्मरण कर आत्मधन्यता का अनुभव कर रही है।

देवभूमि पौड़ी गढ़वाल के काण्डी ग्राम-निवासी कृपाल सिंह बिष्ट ने १८ मई, १९१९ को जन्म लेकर ८ फरवरी १९४२ ई. को गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया। विधिवत् दीक्षा लिया और उत्तराधिकार प्राप्त किया। जिस समय अवेद्यनाथ जी ने दिग्विजयनाथ जी से उत्तराधिकार हासिल किया उस समय का भारतीय परिवेश उथल-पुथल का था। स्वतन्त्रता-संग्राम अपने शिखर पर था। महन्त दिग्विजयनाथ आजादी की यह लड़ाई 'हिन्दू महासभा' के माध्यम से एक योगयोद्धा और संन्यासीयोद्धा के रूप में लड़ रहे थे। आगे चलकर सन् १९४८ ई. में महात्मा गाँधी की हत्या के राजनीतिक छींटे भी महन्त दिग्विजयनाथ पर पड़े। गुरु दिग्विजय के शौर्य-संघर्ष और लक्ष्य को पूर्ण करना जरूरी था। नेपाल में भूमिगत रहते हुए पीठ के उत्तराधिकारी अवेद्यनाथ ने गुरु के मुकदमे की पैरवी की और मन्दिर का दूरस्थ संचालन भी।

सन् १९६९ ई. में महन्त दिग्विजयनाथ के शरीर-त्याग के बाद महन्त अवेद्यनाथ ने गुरु दिग्विजयनाथ के योग्य शिष्य के रूप में उनके द्वारा आरम्भ किये गये शैक्षिक-सामाजिक-धार्मिक और राजनीतिक पुनर्जागरण का मशाल-दीप थामकर आगे बढ़ना शुरू किया। सन्त-संन्यासी-योगी के रूप में ऋषिकर्म करते हुए लोकहित के निमित्त उन्होंने राजनीति में कदम आगे बढ़ाया और कई बार विधायक तथा हर बार सांसद निर्वाचित होकर

*पूर्व आचार्य-हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

जनसेवा का अद्‌भुत परिचय दिया। एक लोकप्रिय राजनयिक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा पूर्वांचल मात्र में नहीं, देशभर में थी। संसद में सदन उन्हें सुनता था।

तमाम शिक्षालयों के जनक महन्त अवेद्यनाथ जी समाज-धर्म-संस्कृति-चिकित्सा-साहित्य और लोकमनोविज्ञान के पारखी युगसन्त थे। विद्वानों-आचार्यों को सम्मान देने वाले अवेद्यनाथ जी शिष्य-वत्सल अभिभावक-गुरु थे। वे सामाजिक सामरस्य के संवाहक थे। सन् १९९४ ई. में काशी के डोमराजा के घर धर्माचार्यों के साथ भोजन कर उन्होंने जाति और पाँति भेद की गहरी खाई को पाठने का पुण्य बटोरा था। अछूत समुदाय के साथ सहभोज करना १९८० ई. से ही उन्होंने आरम्भ कर दिया। २०१४ ई. में देह-त्याग के बाद उन्हें समाधि मन्दिर-परिसर में दी गयी। सचमुच अवेद्यनाथ जी **'परहित सरिस धरम नहिं भाई'** की भावना से भरे महासन्त थे। अवसान के बाद लोकमानस ने उन्हें 'राष्ट्रसन्त' कहा है। इन्हीं राष्ट्रसन्त और नाथयोगी अवेद्यनाथ के उत्तराधिकारी शिष्य योगी आदित्यनाथ जी हैं जो वर्तमानिक अधीश्वर-गोरक्षपीठ हैं।

योगी आदित्यनाथ जैसा व्यंजक नाम अस्तित्व पा सका, गुरु अवेद्यनाथ से नाथपन्थी योगदीक्षा प्राप्त करने के बाद। सन् १९९४ ई. में नाथपन्थ में विधिवत् दीक्षा लेकर देवभूमि-गढ़वाल के पंचूर-निवासी अजयमोहन बिष्ट ने अपने गुरु से 'आदित्यनाथ योगी' का नवनामकरण प्राप्त किया। सूझ-बूझ-सम्पन्न विद्वान् महन्त गुरु अवेद्यनाथ जी ने दीक्षोपरान्त युवक अजय को जब 'आदित्यनाथ योगी' का पन्थ-सम्मत उद्‌बोधन किया तभी आभास हो चला था कि कोई युवासंन्यासी आदित्य है, नाथ है और योगी भी, तो नये नामोपाधि में वह अवश्य ही प्रदीप्त-गम्भीर-महावैरागी होगा। **नाथयोगी आदित्यनाथ जी नाम-गर्भित अर्थ से बहुत आगे निकले। आज नामवाची अर्थ उनके कर्तव्यवाची अर्थ से पीछे छूट गया है। सचमुच योगी जी नाथपन्थ के तेजतप्त आदित्य हैं।**

नाथपन्थ की नवनाथ-शृंखला के उत्तरकाल में गोरक्षपीठ से सम्पृक्त पाँच नाथयोगियों की एक शृंखला दिखलाई पड़ती है। उन्हें नवभाषा में 'पंचनाथ' कहते हुए दोनों नाथ-कड़ियों को जोड़कर

'चतुर्दश नाथयोगी' की मान्यता दी जाय तो यह नयी नाथोपाधि युगमान्य-लोकमान्य और पन्थमान्य हो सकती है। प्रतिप्रश्न भी कैसे उठेगा? 'नवनाथ' (नव=नया, नाथ=नाथयोगी) अर्थात् नया नाथ किंवा 'अभिनव नाथयोगी' नवनाथ पद का अर्थोद्भास है। पान्थिक मान्यता के रूढ़ नवनाथी अर्थ (अर्थात् नौ नाथयोगी) को काई नयी मौलिकार्थी अभिव्यंजना यदि सौंपी जाय तो क्वचित् अनुचित-अन्यथा नहीं होगा। इस नयी शब्दार्थिक मीमांसा के बाद नवनाथों में नये पंचनाथों को जोड़ते हुए यदि सभी के लिए एक नयी सम्बोध्य पदसंज्ञा प्रदान की जाय तो 'चतुर्दश नाथयोगी' (चौदह नाथयोगी) का नया पाठ अथवा मौलिक अध्याय बनेगा। पुनर्समीक्षा की माँग भी करेगा।

इस भाष्य से योगी आदित्यनाथ को चौदह प्रमुख नाथयोगियों में देखना एक नये अध्याय के रूप में पढ़ना है।

सिद्ध गोरक्षपीठ योगधर्म और राजधर्म का सुन्दर सन्धिपीठ है। इस पावन ज्ञानपीठ ने प्रतिज्ञाबद्ध योग्यतम नाथ-उत्तराधिकारियों के तपोतेज से पीठ की कीर्तिकथा को लोकजयी बनाया है। हजार वर्ष की प्रदीर्घ धर्मयात्रा में इस पीठ ने कभी पीठ नहीं दिखायी। अखण्ड धूनी भी और प्रचण्ड तेज भी। विधर्मी प्रभंजन इस प्रतापी पीठ से टकराकर बार-बार लौट गये। जिस तरह अयोध्या **(न योद्धुं शक्या इति सा अयोध्या)** युद्ध में किसी के द्वारा कभी जीती नहीं जा सकी, उसी तरह गोरक्षपीठ अपने स्थापना-काल से आज तक किसी की कुदृष्टि से तेजहीन नहीं बना। किसी भी विषवेलि का असर कैसे पड़ता? गुरु गोरक्षनाथ निर्गुण शिव के सगुण अवतार जो ठहरे। इन्द्रियनिग्रही, गो-रक्षक शिवावतारी बाबा गोरखनाथ के चामत्कारिक योग-तेज और उनमें आस्थाबद्ध लोकविश्वास से कौन परिचित नहीं है? नाथ-परम्परा, सन्त-परम्परा, शास्त्रजगत्, लोकजगत् और अब सम्पूर्ण समरस मानव-समाज इस पीठ को सनातन-संस्कृति और मानवीय इतिहास का अक्षयपीठ मानता है।

(क्रमशः)

भारत के गौरव – पतंजलि

कृष्णमुरारी लाल श्रीवास्तव*

भारतीय विज्ञान और संस्कृति में योगशास्त्र के जनक महर्षि पतंजलि का नाम अमर है। डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित का मत है कि पतंजलि का जन्म-स्थान वर्तमान मध्य प्रदेश की राजधानी से ११ कि.मी. दूर नरसिंहगढ़ रोड पर स्थित गोंदर मऊ है। पतंजलि ने अपने ग्रंथों में इसे 'गोनी' लिखा है। डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित के मतानुसार पतंजलि शंगु राजाओं के पुरोहित थे। उनका जन्म दो शताब्दी ई.पू. में हुआ था।

पतंजलि ने योगशास्त्र की रचना की। उनके द्वारा बतायी गयी योग क्रियाओं द्वारा शारीरिक सन्तुलन, आत्मिक अनुशासन और श्वास-साधना द्वारा शरीर को पुष्ट एवं नीरोग बनाया जा सकता है। उनके योग-ज्ञान से भारत ने विश्व के प्रायः सभी देशों को प्रभावित किया है।

महर्षि पतंजलि ने योग-विज्ञान को चार प्रमुख भागों में विभक्त किया है– (१) ज्ञानयोग, (२) कर्मयोग, (३) राजयोग, और (४) हठयोग। योग के लिए उन्होंने आठ आधार माने हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि। उनके अनुसार, चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं। योग से शारीरिक और आध्यात्मिक विकास होता है। योग क्रिया में जड़-चेतन सभी जुड़े हैं। योग को पूरा करने के लिए प्रकृति की सारी शक्तियाँ सहयोग देती हैं। बिना एकाग्रता, बिना समाधि और बिना सब शक्तियों के संतुलन के योग-साधना असम्भव है।

विद्यालयों में छात्रों को पाश्चात्य ढंग से करासे जाने वाले व्यायाम अथवा शारीरिक शिक्षा और योग में बड़ा अन्तर है। पाश्चात्य शारीरिक शिक्षा में केवल शरीर की उन्नति और मांसपेशियों को पुष्ट बनाने पर बल दिया जाता है; जबकि योग में शरीर, मन और आत्मा एवं उसके प्रत्येक अवयव–परमाणु और अंग के विकास को महत्त्व दिया जाता है। अब विद्यालयों में योग-शिक्षा को महत्त्व दिया जाने लगा है। विदेशों ने भी भारत के योग-विज्ञान को अपनाया है। अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा ने भी अपनी

*१११/२७६ अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०

क्षमता का श्रेय 'योग' को ही दिया था। भारत में सभी अवतार, ऋषि, मुनि, साधक और साधु योग से अनुशासित रहे हैं। श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम और श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहा गया है। गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने भी योगसाधना की थी। महात्मा गाँधी और तिलक योग के कर्म-पक्ष के समर्थक थे।

योग शब्द 'युज्' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिका अर्थ है जोड़, मेल तथा एकत्र अवस्थिति। योग द्वारा जीव अपनी अंत:वृत्तियों को अनुशासित कर आत्मसमर्पण द्वारा परमात्मा का अनुभव कर सकता है। योग चित्तवृत्तियों के निरोध एवं आत्मा और परमात्मा के मिलन में भी सहायक है। पहले से ऋग्वेद, अथर्ववेद और उपनिषदों में बिखरे हुए योग के सिद्धान्तों को पतंजलि ने दार्शनिक रूप प्रदान किया। जैन धर्म और बौद्ध धर्म में भी योग का महत्त्व स्वीकार किया गया। गोरखनाथ, कबीर और नानक ने योग की प्रशंसा बारम्बार अपने काव्य अथवा उपदेशों में की है। पतंजलि के योग का प्रभाव तान्त्रिक सम्प्रदायों और सिख गुरुओं पर भी पड़ा, जिन्होंने इसे अपनाया था। स्वामी विवेकानन्द, शिवानन्द और योगानन्द ने योग का प्रचार यूरोप के देशों में भी किया और आज यूरोप में कई योग-केन्द्र चल रहे हैं। महेश योगी के लाखों विदेशी शिष्य भारत में योग की शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। इस प्रकार पतंजलि के योग का सम्मान प्राचीन काल से अब तक निरन्तर किया जा रहा है।

साभार - 'भारतीय वैज्ञानिक'

■

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

अन्त:करण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भली-भाँति स्थिर हो जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता- २।६५

गोसेवा की महिमा

वरुण कुमार वर्मा 'वैरागी'*

गोमाता वैदिक काल से ही भारतीय धर्म-संस्कृति की मूलाधार रही है। गाय भारतीय कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। लोकवंद्या माता के रूप में गाय की महत्ता अनादि काल से लौकिक व पारलौकिक सभी दृष्टियों से सुप्रतिष्ठित रही हैं। वेदों में गोमहिमा भरी पड़ी है-

माता रूद्राणां, दुहिता वसूनां स्वासा आदित्यनामंमृतस्य नाभिः।

(ऋग्वेद ८/१०/१५)

अर्थात गाय रूद्रों की माता है, वसुओं की पुत्री, अदिति पुत्रों की बहन और घृतरूपी अमृत का खजाना है। गोसेवा से मानव को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है और उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। भवगत् प्राप्ति के अन्यतम साधनों में से गोमाता की सेवा एक श्रेष्ठ सुलभ साधन है। महाभारत में कहा गया है कि-

पुत्रार्थी लभते पुत्रम्, कन्यार्थी तामवाऽनयात्।
धनार्थी लभते वित्तं, धमार्थी धर्माप्नुयात्।।
विद्यार्थी चाप्नुयात विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयातसुखम्।
न किंचित दुर्लभ चैव गवाः भक्तस्य भारत।।

(महा. अनु- ५१-५२)

अर्थात् गोभक्तों के लिए यहाँ कुछ भी दुलर्भ नहीं है। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाता है और कन्यार्थी कन्या। धन चाहने वाले को धन और धर्म चाहने वालों को धर्म प्राप्त होता है, विद्यार्थी विद्या पाता है और सुखार्थी सुख।

सर्वदेवा गवामांङ्गे तीर्थानित्तपदेषुच।
तदगुहयेषु स्वयं लक्ष्मी तिष्ठत्मेव सदा।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण २१-९१)

अर्थात् गोमाता के शरीर में समस्त देवगण निवास करते हैं और गौ के पैरों में समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गाय के गोबर में अष्ट ऐश्वर्युक्त लक्ष्मी

*पूर्व पशुधन प्रसार अधिकारी, पशु-पक्षी सेवाश्रम, नौसड़, गोरखपुर

सदा वास करती हैं- अष्टऐश्वर्यमयी लक्ष्मी गोमये वसतेसदा।

महाभारत में भीष्म जी ने कहा है कि हे युधिष्ठिर! गौ समस्त प्राणियों की माता है। वह सबको सुख देने वाली है-

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदा।

(महा. अनु-६९)

भगवान् श्रीराम तो विप्र, धेनु, सुर, सन्त, हितार्थ अवतरित हुए थे।

बिप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।

(मानस १-१९२)

गोद्विज धेनु संतहितकारी। कृपासिंधु मानुष तनधारी।

(मानस ५/३९)

भगवान् श्री कृष्ण ने गिरिराज पर्वत धारण कर इन्द्रदेव के कोप से गाय, गोपी की रक्षा की और गोविन्द कहलाये। गोसेवा, गोचारण, गोपालन से उनका नाम गोपाल पड़ा। उन्होंने गोवंश की महत्ता को लौकिक व पारलौकिक सभी दृष्टियों से लोक जीवन में प्रतिष्ठित किया। उनकी यही कामना रही-

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(महाभारत ८०/३)

अर्थात गाय मेरे आगे रहें, गाय मेरे पीछे रहें, गाय मेरे चारों तरफ रहें, गाय के मध्य मैं निवास करूँ।

भगवान् शंकर में विलक्षण गो निष्ठा थी। उन्होंने वृषभनन्दी को अपना वाहन बनाया और अपने ध्वज को वृषभ चिह्न से सुशोभित किया जिससे उनका नाम वृषभध्वज वृषभांक पड़ा। स्कन्दपुराण (अनु. २५८-५९) के अनुसार भगवान् शंकर ऋषियों के प्रताप से त्राण पाने के लिए गोलोक जाकर सुरभि गो माता का स्तवन किया था।

भारतीय धर्म शास्त्रों ने गाय को सम्पूर्ण प्राणियों की माता और सब प्रकार सुख प्रदान करने वाली बताया है-

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुख प्रदः।

महाराजा दिलीप ने पुत्र की कामना के लिए अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ द्वारा बताये गये नियमानुसार गोभक्ति-गोसेवा की, जिससे उनकी पत्नी सुदक्षिणा के गर्भ से यशस्वी, प्रतापी पुत्र रघु का जन्म हुआ। उसी के कारण सूर्यवंश का नाम रघुवंश प्रसिद्ध हुआ। (रघुवंश-२-६५)

आचार्य गौतम ऋषि के आदेशानुसार जाबाल पुत्र सत्काम को श्रद्धा एवं निष्ठापूर्वक गोसवा के परिणामस्वरूप ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ। महात्मा गाँधी ने कहा था कि भारत में गोरक्षा का प्रश्न स्वराज्य से किसी प्रकार भी कम नहीं। भारत की सुख-समृद्धि गौ और उनकी सन्तान से जुड़ी हुई है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं गायत्री परिवार शान्तिकुँज हरिद्वार के संस्थापक तपोनिष्ठ पं. श्री रामशर्मा आचार्य ने समाज को गोसेवा, गोपालन, गोरक्षा का संदेश दिया था।

गोरखपुर में श्रीगोरक्षपीठ गोरखनाथ मन्दिर परिसर में एक आदर्श गौशाला है, जहाँ भारतीय उत्तम नस्ल की साहिवाल, गीर गायें हैं। मा. मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, गोरक्षपीठाधीश्वर श्रद्धेय योगी आदित्यनाथ अपनी दिनचर्या प्रातः गो सेवा से ही आरम्भ करते हैं। प्रत्येक वर्ष यहाँ गोरक्षा विषयक सम्मेलन भी होता है, जिसमें भारत के महान् सन्त. मनीषी, विद्वान, वक्ता आते हैं। गीताप्रेस गोरखपुर की भी एक आदर्श गोविन्द गौशाला है जहाँ भारतीय उत्तम नस्ल की गायें हैं और गोपाष्टमी पर वृहद कार्यक्रम होता है।

धर्मपरायण भारत देश में गोवध पर पूर्ण पाबन्दी लगाने के लिए लेखक ने मा. मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश पूज्य योगी आदित्यनाथ व मा. प्रध ानमन्त्री भारत सरकार श्रद्धेय नरेन्द्र मोदी जी से निवेदन भी किया है क्योंकि, गोरक्षा में ही राष्ट्र का विकास, राष्ट्र की वास्तविक उन्नति, समृद्धि, सम्पन्नता निहित है।

श्रद्धाभक्ति से जो गायों की सेवा करता है, गोमाता उसे समस्त पापों व तापों से मुक्त करके ज्ञानी पूज्य, वंश यशस्वी, तेजस्वी, समृद्धिशाली, सुखी, सम्पन्न बना देती हैं। अस्तु परमपूजनीया, वन्दनीया हैं, हमारी गो माता।

■

वाणी की शक्ति

हृदयनारायण दीक्षित*

गायें खूब बोलती हैं। छान्दोग्य उपनिषदके पात्र गायों से बातें करते थे। इसी उपनिषद् के अनुसार राजा जानश्रुति ने आकाशचारी हंसों की बातें सुनी थीं। वर्षा ऋतु में झींगुर बिना थके लगातार पूरी रात बोलते हैं। कुत्ते खूब बोलते हैं। अर्थ वह ही जानते होंगे लेकिन हम लोग उसे भौकना कहते हैं। भ्रमर गाते हैं। बोलते सब हैं। हम मनुष्य सबसे ज्यादा बोलते हैं। बातें पदार्थ होती तो वह ट्रक जैसे वाहन में भरी जा सकतीं। इस सामान्य गणित में हम सब दिनभर दो-तीन ट्रक बोलते हैं। मनुष्य बोलने के साथ लिखते भी हैं। बोलना जीवन्त सम्बोधन होता है। श्रोता सामने होते हैं। वक्ता श्रोता में सीधा सम्बन्ध होता है। लिखने में श्रोता सामने नहीं होते। लेखक-पाठक सम्बन्ध अप्रत्यक्ष होते हैं। कुशल वक्ता बोलते समय श्रोता पर पड़ रहे प्रभाव देखता है। वह श्रोता की अपेक्षा और उपेक्षा पर ध्यान देता है। वह सम्बन्ध बढ़ाने के उपाय खोजता है। लेखक को यह सुविधा नहीं है। श्रोता सामने और पाठक दूर। पाठक भी लेखन पर टिप्पणी करते हैं लेकिन ऐसी प्रतिक्रिया लेखक तक कम पहुँचती है। लेखक अपने ही विवेचन में अपने लेखन के प्रति कभी तुष्ट या असन्तुष्ट रहते हैं। लेखन में संशोधन की गुंजाइश रहती है। भाषण में संशोधन के अवसर नहीं होते। भाषण तात्कालिक स्मृति और अनुभूति की अभिव्यक्ति होते हैं।

ऋग्वेद बोला गया है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय भी ऋषि कथन है। तब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था। बोलते समय संशोधन के अवसर नहीं होते। लिखने में संशोधन के अवसर होते हैं। आश्चर्य है कि वेद और प्राचीन उपनिषद् भी सम्पादित संशोधित से ज्यादा व्यवस्थित जान पड़ते हैं। लेकिन सम्पादित हैं नहीं। ऋग्वेद के तमाम सूक्तों में अनेक विषय मिले हुए हैं। इन्हें शिष्यों ने आचार्यों से सुना। उन्होंने इसी परम्परा को आगे बढ़ाया। वैदिक ज्ञान 'श्रुति' कहा गया है। पुराण बाद के हैं। लेकिन इनमें भी श्रुति

*अध्यक्ष, विधान सभा, उत्तर प्रदेश

परम्परा का दर्शन है। पुराण 'सूतोवाच'– सूत ने कहा' से शुरू होते हैं। गीता में भी 'धृतराष्ट्र ने पूछा, संजय ने कहा। अर्जुन ने पूछा, श्रीकृष्ण बोले' आदि वाक्य हैं। यूनानी दर्शन में प्लेटो का 'डायलाग' विख्यात है। सुकरात बोलते थे, उनके पहले थेल्स भी। भारतीय प्राचीन साहित्य में संवाद की परम्परा है। महाभारत के तमाम प्रसंगों में ऊँट, पक्षी, साँप आदि भी संवादरत हैं। नारद मजेदार पात्र हैं। वह ऋग्वेद से लेकर तुलसीदास को रामचरितमानस में भी उपस्थित हैं। वह दिलचस्प संवादी हैं। महाभारत में वह युधिष्ठिर से बातें करते हैं। युधिष्ठिर यक्ष प्रश्नों के उत्तर देते हैं। कोई कह सकता है कि महाभारत लिखी गयी है। ऐसा सही हो सकता है लेकिन महाभारतकार भी संवादप्रिय हैं। उन्हें बोले गये प्रसंगों में रुचि है।

समाज का निरन्तर विकास हुआ है। इसी निरन्तरता में सांस्कृतिक तत्त्वों का भी विकास हुआ है। संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में बोले गये वाक्यों की मुख्य भूमिका है। समाज में निरन्तर संवाद चलता है। यह संवाद जारी भी है। लिपि और छापेखाने के विकास के बाद लिखे शब्दों का प्रयोग बढ़ा। लिखते समय मस्तिष्क में बोलने जैसी सोचने की गतिविधि चलती है। लेकिन लिखे गये को बार-बार संशोधित भी किया जा सकता है। समाज व्यवस्था में परिवर्तन करने वाले महानुभावों ने लगातार जनसंवाद किये हैं। गाँधी जी ने लाखों सभाओं को सम्बोधित किया था। डा. अम्बेडकर के भाषण, लेखन संकलन का नाम 'बाबा साहब राईटिंग्स एण्ड स्पीचेज' है। डा. लोहिया के भाषण आमजनों में लोकप्रिय थे। पं. दीन दयाल उपाध्याय के भाषण प्रभावशाली थे। अटल जी के भाषणों में सम्मोहन था। संसद और विधान मण्डल वक्तव्यों के ही संवैधानिक मंच हैं। बोले गये शब्द सीधा प्रभाव पैदा करते हैं। वाक्य वाक् से बनते हैं और वाक् वाणी है। वाणी की शक्ति बड़ी है। सुन्दर वाक् श्रोता के चित्त में हलचल पैदा करती है और तमाम धारणाओं का सृजन या विध्वंस करती है।

संस्कृत समृद्ध भाषा है और आनन्दसर्जक बोली है। बोले गये सुन्दर वचन को 'सूक्त' कहते हैं। सूक्त अर्थात् सु-उक्त है। ऋग्वेद में सूक्त है। इसी तरह ऋषियों की बोली 'सुवाच' है। मति बुद्धि है। सुन्दर मति 'सुमति'

है। सुमति भी सुन्दर ढंग से व्यक्त होकर सुवाच है। मधुर वचन श्रेयस्कर हैं। पूर्वज चाहते थे कि वाणी मधुरसा हो। वाणी का संयम सुखी समाज जीवन का आधार है। बोलना दिनचर्या का बड़ा भाग है। विज्ञान एवं दर्शन के तत्त्व बोलकर प्रकट किये गये। २०वीं सदी के लोकप्रिय वक्ता दर्शन शास्त्री ओशो की लगभग दो सौ पुस्तकें हैं। सभी किताबें प्रवचन हैं। प्रवचन रिकार्ड किये गये। उन्हें सम्पादन के बाद पुस्तक का आकार दिया गया। बोलना स्वाभाविक है। वाणी संयम आवश्यक है। अपनी बोली को मधुमय बनाना सांस्कृतिक है। वाणी में अर्थ होता है। वाणी संयम टूटते ही अर्थ का अनर्थ हो जाता है। संयम प्रशंसनीय है लेकिन, इसमें लगातार सतर्कता की जरूरत पड़ती है। सावधानी हटी, दुर्घटना घटी। स्वयं के भीतर शुभ के साथ अशुभ भी होता है, शब्द के साथ अपशब्द भी होते हैं। भीतर तमाम कूड़ा-कचरा है, हीरा माणिक्य जैसे शब्द रत्न भी हैं।

वाक्सौन्दर्य का एक उपाय संयम है। वाक् संयम अर्थात शब्द-अनुशासन। अनुशासन और संयम प्राकृतिक नहीं है। यह सामाजिक विकास का अर्जन है। अर्जित संयम और अनुशासन कभी भी टूट सकते हैं इसलिए इन पर पूरा विश्वास करना उचित नहीं है। मेरे विचार में भीतर के शुभ शिव तत्त्व को लगातार संवर्द्धित करना ज्यादा उपयोगी है। घर में कूड़ा है तो दुर्गन्ध को संयम से नहीं रोका जा सकता। हमारा चित्त दो शब्दकोष रखता है। एक शब्दकोष में सुन्दर शब्द हैं, मधुरस भरे सगंधा शब्द पुष्प हैं। प्रेम रस से भरे पूरे प्रेम शब्द हैं। इस शब्दकोष में पूर्णिमा का शीतल स्पर्श है। आस्तिकता की आश्वस्ति है। यह शब्दकोष शिव समृद्ध है। भीतर अन्य शब्दकोष भी है। दूसरे में अप्रिय विचार हैं, इस विचार के लिए अपशब्द है। मानहानि, आक्रामकता और अपमान के लिए तमाम शब्द आयुध हैं। इनके प्रयोग से बचना संयम है। शिव संकल्प से भरे-पूरे चित्त में दूसरे शब्दकोष के लिए स्थान नहीं होते। तब जो बोले तो आनंदवर्द्धन। भीतर कटुता नहीं होगी तो संयम की जरूरत नहीं पड़ती। हम सबकी बोली मधुमय हो। यही शुभकामना।

■

मन चंगा तो कठौती में गंगा

डॉ. कैलाश पति पाण्डेय*

सन्त ही सृष्टि के आधार हैं। यदि कल्प के आदि में सप्तर्षि न हों तो सृष्टि का उपक्रम और उपसंहार सम्पन्न नहीं हो सकता। इसी से यह नियम है कि देश एवं काल में सन्त का होना आवश्यक है। यहाँ तक कि तीर्थस्थानों में विशेष रूप से एवं अन्यत्र भी गुप्त या प्रकट किसी भी वेशभूषा में सन्तों की उपस्थिति मानी जाती है। फ़कीरी मुहावरे में उन्हें 'कुतुब' कहते हैं। उन्हीं पर लोक-कल्याण निर्भर है।

सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि आत्मा की अमरत्व और आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति कराने वाला संसार में कोई भी पदार्थ नहीं है। इसीलिए वेदतत्त्वज्ञ आचार्य और महर्षियों ने उस अमृतार्णव की प्राप्ति के लिये कर्म, ज्ञान और भक्ति नामक तीन मुख्य उपाय बतायें हैं। वेदविहित कर्म निष्काम भाव से फलेच्छा रहित होकर भगवत्प्राप्ति के लिये करते रहने से अन्तःकरण की शुद्धि और सात्त्विकता की वृद्धि होने पर ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है परन्तु, ये दोनों ही उपाय साधारण जीवों के लिये अत्यन्त क्लेशसाध्य हैं। श्रीसीताराम-पद-पद्म प्रवाहित सुधासागर में निमग्न होने का सर्वोत्तम सरल उपाय भक्ति है।

पुराणों में पुनः पुनः घोषित किया गया है कि ईश्वर के प्रति एकान्तिक भक्ति के द्वारा चण्डाल भी ब्राह्मण से बढ़कर हो सकता है और ईश्वर-भक्ति-विहीन होने पर ब्राह्मण भी चाण्डालाधम हो सकता है-

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्ती द्विलाधिकः।
विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधिकः॥

(बृहन्नारदीय पुराण ३२।३९)

शास्त्रकारों ने इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन – इस प्रकार से नौ भेद किये हैं। इन नौं में से किसी एक का भी पूर्णरूप से आश्रय ग्रहण कर लेने पर जीव अनन्त सुख का भागी हो सकता है। भिन्न-भिन्न सन्तों ने भक्ति के

*गीताप्रेस, गोरखपुर

भिन्न-भिन्न भावों को अपनाया है। इन्हीं भक्ति सेवी सन्तों में से आज हम एक महान् सन्त प्रवर श्रीरविदास जी (श्रीरैदास जी) महाराज के पावन चरित्र का पुण्य स्मरण करते हैं-

मध्ययुगीन सन्तों में रैदास का विशिष्ट स्थान है। कबीर दास ने 'सन्तन में रविदास' कहकर इन्हें मान्यता दी है। सन्तों में प्रसिद्ध रविदास (रैदास) के जन्म के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके जन्म की निश्चित तिथि अब तक सन्दिग्ध-सी है।

कबीर दास के समकालीन होने के कारण कुछ विद्वान् इनका जन्म समय ईस्वी सन् की पन्द्रहवीं सदी मानते हैं। कुछ लोग ईस्वी सन् १३९८ मानते हैं और कुछ विद्वानों का मत है कि सन्त रविदास जी का जन्म काशी के सीर गोवर्धन में माघ पूर्णिमा के दिन संवत् १४३३ को हुआ था। श्री रविदास जी के जन्म-सम्बन्धी यह दोहा बहुत प्रचलित है–

चौदह सौ तैंतीस को माघ सुदी पन्द्रास।
दुखियों के कल्याण हित प्रगटे गुरु रविदास॥

सन्त रविदास जी के माता-पिता के नामों में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनके माता-पिता का नाम रघु (रग्घू) और माता का नाम घुरबिनिया बताया जाता है। महत्त्वपूर्ण साक्ष्य के आधार पर इस महान् सन्त का जन्म चर्मकार कुल में हुआ था –

'नीचे से प्रभु आँच कियो है, कह रैदास चमारा।'

सन्तशिरोमणि रविदास जी की निर्मल वाणी सन्देह की ग्रन्थियों को खोलने में पूर्ण समर्थ है। इस सन्त ने जो भी कहा है, वह वेद-शास्त्रों के अनुकूल ही है। उन्होंने सत् और असत् का विवरण करने वाला परमहंसों का भाव अपने हृदय में धारण किया तथा सार-असार का निर्णय करने वाली इनकी वाणी को परमहंसों ने अपने हृदय में धारण किया। आपने अपने इसी मर्त्य शरीर से भगवान् की कृपा और परम श्रेय गति प्राप्त की। महान् पुरुषों ने अपने ऊँचे वर्ण एवं आश्रम के अभिमान को छोड़कर जिनकी चरण-धूलि की वन्दना की, उन श्रीरैदास जी की वाणी शंकाओं को खण्डन करने में अति ही चतुर है।

बचपन से रैदास साधुसेवी थे। भगवान् के प्रति अगाध प्रेम और भक्ति

के कारण वे अपने पारिवारिक व्यवसाय से नहीं जुड़ पा रहे थे। बताया जाता है कि पारिवारिक व्यवसाय से जुड़ने के लिये इनके पिता ने इनका विवाह काफी कम उम्र में ही लोना नाम की कन्या से कर दिया। कालान्तर में उन्हें पुत्र रत्न की भी प्राप्ति हुई जिसका नाथ विजयदास पड़ा। विवाह के बाद भी रविदास जी की साधु-सेवा और भगवद्भक्ति में लेशमात्र भी कमी नहीं आयी। इस कारण इनके पिता रघु इनपर क्रुद्ध रहा करते थे। बात यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने रविदास को घर से निकाल दिया तथा खर्च के लिये एक पैसा भी नहीं दिया।

रैदास अलमस्त फक्कड़ थे। लोक-परलोक की, निन्दा-स्तुति की ओर उनकी दृष्टि गयी ही नहीं। रैदास एक मामूली झोपड़े में रहते थे। जूते बनाकर अपनी जीविका चलाते थे। पास में ही श्रीठाकुर जी की चतुर्भुजी मूर्ति थी। जूते टाँकते जाते और प्रेम विह्वल वाणी में अपने हरि की ओर निहार-निहार कर गाते रहते–

प्रभुजी! तुम चन्दन, हम पानी। जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभुजी! तुम घन वन, हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी! तुम दीपक, हम बाती। जाकी जोति बरै दिन दाती॥
प्रभुजी! तुम मोती, हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी! तुम स्वामी, हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

कहते हैं, इनकी आर्थिक दुरवस्था को देखकर भगवान् को दया आयी और उन्होंने साधु रूप में रैदास जी के पास आकर उनको पारस पत्थर दिया और उससे जूता सीने के एक लोहे के औजार को सोना बनाकर दिखा भी दिया। रैदास ने इस पत्थर को लेने से इनकार कर दिया। परन्तु, साधु भी हठी था। लाचार होकर रैदास ने कहा, नहीं मानोगे तो छप्पर में खोंस दो, जब इच्छा हो, तब निकाल ले जाना। तेरह महीने बीत जाने के बाद वही साधु फिर आये और पत्थर का हाल पूछा तो रैदास ने कहा कि जहाँ खोंस गये थे वहीं देख लो, मैंने उसे छुआ भी नहीं है। रैदास जी की ऐसी बात सुनकर पारस को लेकर वे चले गये।

सन्त कुलभूषण कवि रैदास उन महान् सन्तों में अग्रणी थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी रचनाओं की विशेषता लोकवाणी का

अद्‌भुत प्रयोग रही है जिससे जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव पड़ता है। मधुर एवं सहज सन्त रैदास की वाणी ज्ञानाश्रयी होते हुए भी ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाओं के मध्य सेतु की तरह है। सन्त-मत के विभिन्न संग्रहों में उनकी रचनाएँ संकलित मिलती हैं। राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में भी उनकी रचनाएँ मिलती हैं। रैदास की रचनाओं का एक संग्रह 'बेलवेडियर प्रेस', प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके बहुत से पद 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में भी संकलित मिलते हैं। यद्यपि दोनों प्रकार के पदों की भाषा में बहुत अन्तर है तथापि प्राचीनता के कारण 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के संग्रहीत पदों को प्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'रैदास की बानी' नाम से प्रकाशित है। रैदास की भाषा कृत्रिमता से रहित अत्यन्त सरल तथा सुबोध है। उस समय बोलचाल में फ़ारसी का बड़ा महत्त्व था, इस कारण इनके पदों में फ़ारसी के शब्दों की अधिकता है।

आम आदमी के सरोकारों से जुड़ी रैदास की कविता का जादू आज भी बरकरार है। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि रविदास की कविता वर्तमान समय में पहले से कहीं ज्यादा शिद्दत से याद आती है। यह कविता अपने जन सरोकारों में इस कदर प्रतिबद्ध है कि कर्म सौन्दर्य के लिये गंगास्नान, तीर्थादि के भ्रमण को मन के पवित्र न रहने पर अनौचित्यपूर्ण ठहरा देने का जोखिम तक उठाती है।

सन्त रविदास के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से समय तथा वचन के पालन सम्बन्धी उनके गुणों का ज्ञान मिलता है। एक दिन सन्त रैदास अपनी झोपड़ी में बैठे प्रभु का स्मरण कर रहे थे। तभी एक ब्राह्मण उनके पास अपना जूता ठीक कराने आया। रैदास ने पूछा कहाँ जा रहे हैं, ब्राह्मण बोला गंगा स्नान करने जा रहा हूँ। जूता ठीक करने के बाद ब्राह्मण द्वारा दी गयी मुद्रा को वापस करते हुए रैदास जी ने कहा, 'आप यह मुद्रा मेरी तरफ से माँ गंगा को चढ़ा देना।' ब्राह्मण जब गंगा पहुँचा और स्नान के बाद जैसे ही उसने कहा– 'हे गंगे! रैदास की मुद्रा स्वीकार करो।' तभी गंगा ने अपना एक हाथ ऊपर उठाकर उस मुद्रा को ले लिया और उसके बदले में ब्राह्मण को एक सोने का कंगन दे दिया।

ब्राह्मण जब कंगन लेकर वापस लौट रहा था, तब उसके मन में

विचार आया कि मैं इस कंगन को राजा को दे दूँ तो मुझे कुछ उपहार मिलेगा और उसने राजा को कंगन दे दिया तथा उपहार लेकर घर चला गया। जब राजा ने यह कंगन रानी को दिया तो रानी खुश हो गयी और बोली मुझे ऐसा ही एक और कंगन दूसरे हाथ के लिये चाहिए। राजा ने ब्राह्मण को बुलाकर कहा वैसा ही कंगन एक और चाहिए, अन्यथा राजदण्ड का पात्र बनना पड़ेगा। ब्राह्मण परेशान हो गया कि दूसरा कंगन कहाँ से लाऊँ? डरा हुआ ब्राह्मण संत रविदास के पास पहुँचा और सारी बात बतायी। रैदास जर बोले कि आपने मुझे बिना बताये राजा को कंगन भेंट कर दिया, फिर भी परेशान न हों। आपके प्राण बचाने के लिये मैं गंगा से दूसरे कंगन के लिये प्रार्थना करता हूँ। ऐसा कहते ही रैदास जी ने अपनी वह कठौती उठायी जिसमें वह चमड़ा गलाते थे, उसमें पानी भरा था। रैदास जी ने माँ गंगा का आह्वान कर अपनी कठौती से जल छिड़का, जल छिड़कते ही कठौती में एक वैसा ही कंगन प्रकट हो गया। रैदास जी ने वह कंगन ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण खुश होकर राजा को वह कंगन भेंट करने चला गया। तभी से यह कहावत प्रचलित हुई कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

सन्त रविदास वस्तुतः मानव धर्म के संस्थापक थे। उन्होंने कुल और जाति की श्रेष्ठता को मिथ्या बताया। इस महान् सन्त की वाणी ने समाज के व्यापक हित की कामना करती हुई एक सौ बीस वर्ष पूरा करके पूर्ण रूप से विश्राम ले ली। इनके पन्थ के अनुयायियों का विश्वास है कि वह सदेह गुप्त हो गये। गुजरात, बिहार आदि कई प्रान्तों में लाखों लोग ऐसे हैं, जो अपने को 'रैदास' कहते हैं।

अज भी सन्त रविदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान् नहीं होता है। विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान् बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण सन्त रैदास को अपने समय के समाज में अत्यधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

■

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

गुरु श्री गोरखनाथ मन्दिर
(मकर संक्रान्ति पर्व और खिचड़ी मेला)

डॉ. फूलचन्द प्रसाद गुप्त*

मकर संक्रान्ति भारतीय संस्कृति का महापर्व है। यह पर्व सम्पूर्ण देश में किसी न किसी रूप में मनाया ही जाता है। 'संक्रान्ति' का अर्थ है– एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। सूर्य जब एक राशि को छोड़कर दूसरी राशि में प्रवेश करते हैं, तब उसे संक्रान्ति कहते हैं। सूर्य जिस राशि में प्रवेश करते हैं उसी के नाम से संक्रान्ति जानी जाती है। सूर्य छः महीने उत्तरायण एवं छः महीने दक्षिणायन रहते हैं। दक्षिण से उत्तर होती हुई उनकी गति उत्तरायण एवं उत्तर से दक्षिण की गति दक्षिणायन कहलाती है। प्रत्येक वर्ष मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य अपनी कक्षा परिवर्तित करके दक्षिणायन से उत्तरायण होकर मकर राशि में प्रवेश करते हैं। अतएव इसका नाम मकर संक्रान्ति पड़ा।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह परिवर्तन सूर्य के कारण ही होता है। सूर्य चराचर जगत् के प्राणाधार हैं। सूर्य के बिना सृष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मकर संक्रान्ति से ही प्रकृति में परिवर्तन प्रारम्भ होता है। तेज, ऊर्जा और ओजस्विता के स्रोत सूर्य के कारण प्रकृति में उपर्युक्त गुण दिखायी देने लगते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह प्रकृति परिवर्तन का पर्व बड़े धूम–धाम से मनाया जाता है। लोग इस दिन बड़े प्रातः नदियों एवं सरोवरों में स्नान करते हैं, सूर्य की आराधना करते हैं और तिल, गुड़ और चावल का दान करते हैं। उड़द की दाल और चावल की खिचड़ी बनाकर खाते हैं। लोग कहते हैं इसमें शीत को शान्त करने की शक्ति होती है। यह मकर संक्रान्ति का महापर्व पूर्वी उत्तर प्रदेश में खिचड़ी पर्व के रूप में जाना जाता है।

यह पर्व प्रगति, ओजस्विता और सामाजिक समरसता का पर्व है, नवीन ऊर्जा ग्रहण करने का पर्व है। यह सूर्य उत्सव के रूप में भी जाना जाता है।

---

*प्रवक्ता–हिन्दी, महाराणा प्रताप इण्टर कॉलेज, गोरखपुर

पूर्वी उत्तर प्रदेश का महापर्व गुरु गोरखनाथ जी के नाते से लोक में जाना जाता है। इस अवसर पर श्रीगोरखनाथ मन्दिर परिसर में एक महीने का खिचड़ी मेला लगता है। श्रद्धालु इस अवसर पर गोरखनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाते हैं और भभूत का प्रसाद ग्रहण करते हैं। उसके बाद वे आवश्यक वस्तुओं की खरीददारी एवं मनोरंजन भी करते हैं।

मकर संक्रान्ति का भारतीय जीवन में विशेष महत्त्व है। आज के दिन खरमास समाप्त हो जाता है और शुभ कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। खरमास में लगा निषेध समाप्त हो जाता है। सूर्य का उत्तरायण होना देवताओं का दिन और दक्षिणायन रात्रि मानी जाती है। भीष्म पितामह ने अपना शरीर त्यागने के लिए सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा की थी।

इस समय मेले का वातावरण सतरंगी हो जाता है। पूरा परिसर आस्था और उत्साह का केन्द्र बन जाता है। एक तरफ गुरु गोरखनाथ जी के प्रति भक्ति तो दूसरी तरफ मनोरंजन भक्तों को गोरखनाथ मन्दिर के खिचड़ी मेले में आने के लिए उत्सुक कर देता है। श्रीगोरखनाथ मन्दिर बिजली के झालरों से-सजा रहता है। रात्रि में मन्दिर की भव्यता देखते ही बनती है।

मकर संक्रान्ति का गुरु गोरखनाथ से सम्बन्ध

शिवावतार महायोगी गुरु गोरखनाथजी से मकर संक्राति का विशेष सम्बन्ध है। एक समय वह भ्रमण करते हुये कांगड़ा जिला (हिमांचल प्रदेश) के ज्वाला देवी के स्थान पर पहुँचे। महायोगी को आया देखकर स्वयं देवी प्रकट हुईं और उनका स्वागत करते हुए उन्होंने उनसे धाम में ही भोजन ग्रहण करने का अनुरोध किया। देवी के स्थान में वामाचार विधि से पूजा अर्चना होने के कारण मद्य-मांस युक्त तामसी भोजन बनता था, जिसे महायोगी गोरखनाथजी ग्रहण नहीं करना चाहते थे। उन्होंने देवी से प्रार्थना की कि मैं खिचड़ी खाता हूँ और वह भी मधुकरी द्वारा प्राप्त करके। देवी ने कहा कि ठीक है मैं खिचड़ी पकाने के लिए अदहन गरम करा रही हूँ आप खिचड़ी माँग कर ले आएँ। कहते हैं वहाँ से महायोगी गोरखनाथ जी भिक्षा में खिचड़ी माँगते हुए अयोधया की इस प्रान्त भूमि में, जो अब महायोगी गोरखनाथ जी के नाम से ही गोरखपुर कहलाता है, आ गए। शान्त

और एकान्त स्थान देखकर हिमालय की तलहटी की इस पुण्य भूमि में महायोगी समाधिस्थ हो गये। खिचड़ी के लिए रखा गया उनका खप्पर श्रद्धालुओं और दर्शनार्थियों द्वारा खिचड़ी चढ़ाते रहने के बाद भी न तो भरा और न ही वे लौट कर ज्वाला देवी के धाम गये। महायोगी गोरखनाथजी के उसी अक्षय पात्र में तब से आज तक लोग खिचड़ी चढ़ाते चले आ रहे हैं।

शिवावतार हैं महायोगी गुरु गोरक्षनाथ

गुरु गोरखनाथ हठयोग के आचार्य हैं। कहा जाता है कि एक बार गोरखनाथ समाधि में लीन थे। इन्हें गहन समाधि में देखकर माँ पार्वती ने भगवान शिव से उनके बारे में पूछा। शिवजी बोले, लोगों को योग शिक्षा देने के लिए ही उन्होंने गोरखनाथ के रूप में अवतार लिया है। इसलिए गोरखनाथ को शिव का अवतार भी माना जाता है। इन्हें चौरासी सिद्धों में प्रमुख माना जाता है। इनके उपदेशों में योग और शैव तन्त्रों का सामन्जस्य है। ये नाथ साहित्य के आरम्भकर्ता माने जाते हैं। गोरखनाथ की लिखी गद्य-पद्य की चालीस रचनाओं का परिचय प्राप्त है। इनकी रचनाओं तथा साधना में योग के अंग क्रियायोग अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान को अधिक महत्व दिया है। गोरखनाथ का मानना था कि सिद्धियों के पार जाकर शून्य समाधि में स्थित होना ही योगी का परम लक्ष्य होना चाहिए। शून्य समाधि अर्थात् समाधि से मुक्त हो जाना और उस परम शिव के समान स्वयं को स्थापित कर ब्रह्मलीन हो जाना, जहाँ पर परम शक्ति का अनुभव होता है। हठयोगी प्रकृति को चुनौती देकर उसके सारे नियमों से मुक्त हो जाता है और जो अदृश्य प्रकृति है, उसे भी लाँघकर परम शुद्ध प्रकाश हो जाता है।

मकर संक्रान्ति के पूर्व ही उमड़े श्रद्धालु

मकर संक्रान्ति १४ जनवरी वृहस्पतिवार से पूर्व ही श्रद्धालुओं का गोरखनाथ मन्दिर में आना प्रारम्भ हो गया था। उत्तर भारत के सबसे बड़े धार्मिक और ऐतिहासिक आयोजन में भाग लेने वाले श्रद्धालु बुधवार को दोपहर से ही आने शुरू हो गये थे। देर रात तक लगभग एक लाख से अधिक श्रद्धालु मन्दिर पहुँच चुके थे। ये श्रद्धालु दिल्ली, पंजाब, हरियाणा,

नेपाल और उत्तरी बिहार से आये थे। देर रात तक श्रद्धालुओं के आने का क्रम जारी रहा। मन्दिर की ओर से दूर से आने वाले श्रद्धालुओं के लिए आवासीय व्यवस्था की गयी थी। भयंकर ठंड को देखते हुए जगह-जगह अलाव की व्यवस्था थी।

मकर संक्रान्ति की पूर्व संध्या पर गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने हिन्दू समाज को मकर संक्रान्ति की शुभकामना दी। महाराज जी ने कहा कि जगत्-पिता सूर्य की उपासना एवं सामाजिक समता का महापर्व 'मकर संक्रान्ति' त्योहारों की परम्परा में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस दिन से सूर्य नारायण उत्तरायण होते हैं जो सनातन हिन्दू-धर्म-संस्कृति में हर प्रकार के शुभ एवं मांगलिक कार्यों को प्रारम्भ करने के लिए पुण्य एवं प्रशस्त माना जाता है। पूरे देश के अन्दर अलग-अलग नाम एवं रूप में यह पर्व मनाया जाता है। उत्तरी भारत में इसे खिचड़ी महापर्व के रूप में मनाते हैं तो दक्षिणी भारत में 'पोंगल', पंजाब में 'लोहड़ी', बंगाल में 'तिलवा संक्रान्ति' और असम में 'बिहु' आदि नामों से इस पर्व को मनाते हैं।

मकर संक्रान्ति मुख्य पर्व

बुधवार के सायंकाल से ही गुरु गोरक्षनाथ के प्रति श्रद्धा और आस्था का ज्वार मन्दिर परिसर में दिखायी देने लगा था। श्रद्धालुओं का समूह पूरे भक्ति भावना के साथ मन्दिर मार्ग से उमड़ता दिखा। सर्वत्र गुरु गोरक्षनाथ का जयघोष सुनायी पड़ने लगा था। दूर-दूर से आये श्रद्धालुओं के मुख बाबा गोरखनाथ जी की भक्ति के कारण प्रसन्न दिख रहे थे। कोई क्लान्त नहीं था। अपने आराध्य की एक झलक पाने की उत्सुकता सर्वत्र दिखाई पड़ी। देर रात से ही भक्त भीम सरोवर में स्नान करके पंक्तिबद्ध दर्शन की प्रतीक्षा में खड़े थे। 'गुरु गोरक्षनाथ की जय' 'हर-हर महादेव' के जयघोष से मन्दिर परिसर गूंजायमान था।

बृहस्पतिवार को ब्रह्ममुहूर्त में तीन से चार बजे के बीच विधि-विधान से श्रीनाथ जी का पूजन-अर्चन हुआ। रोट के महाप्रसाद से गुरु गोरखनाथ जी का भोग लगा। पहली 'खिचड़ी' श्रीगोरखनाथ मन्दिर की ओर से

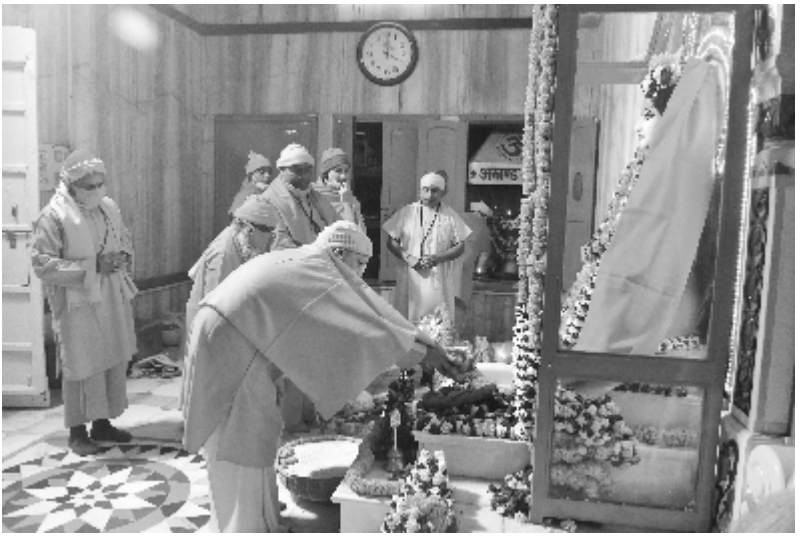

मकर संक्रान्ति के महापर्व के अवसर पर महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ को खिचड़ी चढ़ाते हुए गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज के द्वारा चढ़ायी गयी। भारत राष्ट्र की सुख-समृद्धि की कामना के साथ पूज्य गोरक्षपीठाधीश्वर ने नेपाल राष्ट्र के कल्याण एवं मंगलकामना को लेकर श्रीनाथ जी को नेपाल राज परिवार से आयी खिचड़ी चढ़ायी। इसके बाद मन्दिर के कपाट श्रद्धालुओं के लिए खोल दिये गये। श्रद्धालुओं का समूह गुरु गोरखनाथ की जय, गौ माता की जय, गंगा माता की जय, भारत माता की जय और हर-हर महादेव के जयघोष के साथ मन्दिर परिसर में उमड़ पड़ा। श्रद्धालुओं की भीड़ इतनी थी कि दिन में कई बार इसकी लम्बाई मुख्य द्वार तक देखी गयी।

गुरु गोरखनाथ मन्दिर का परिसर। लाखों श्रद्धालु। पौ फटने में अभी देरी। पंक्तिबद्ध श्रद्धालु। श्रद्धा हिलोरें लेती हुई। श्रद्धालु अपने आराध्य गुरु गोरखनाथ जी की एक झलक पाने को आतुर । धैर्यशीलता और अनुशासन। भक्ति और श्रद्धा का अद्भुत संगम। गुरु गोरखनाथ जी की जयकार से गूंजता गगन मण्डल। 'हर हर महादेव' का गगनभेदी जयघोष। जयघोष के साथ एक साथ उठते हजारों हाथ। सामाजिक समरसता का अद्भुत दृश्य।

भेदभाव–जाति–पाँति का भेदभाव मनुजता में शून्य। विशेष–सामान्य भक्त में विलीन। सभी बाबा गोरखनाथ के भक्त। श्रद्धालु केवल पूर्वी उत्तर प्रदेश के ही नहीं बल्कि भारत के कई प्रदेशों से आये हुए। चेहरों पर भक्ति की चमक। दर्शन के लिए अपनी बारी की प्रतीक्षा। श्रद्धा से नत मस्तक। दर्शन लाभ कर लौटते हुए भक्त। अपने आराध्य का दर्शन पाकर प्रफुल्लित। पुण्य लाभ की तुष्टि का भाव मुख पर।

मकर संक्रान्ति के अवसर पर शिवावतार महायोगी गुरु गोरक्षनाथ को खिचड़ी चढ़ाते हुए श्रद्धालु

पूरा मन्दिर परिसर श्रद्धालुओं से भरा हुआ। मन्दिर की ओर आने वाले मार्गों पर श्रद्धालुओं का ताँता। भक्ति–प्रवाह मन्दिर की ओर। प्रकाश से स्नात गुरु गोरखनाथ मन्दिर। प्रातः होने में कुछ कसर। घण्टे की ध्वनि से ध्वनित सम्पूर्ण परिसर। पूर्वी क्षितिज से अरुणाभा। तिमिर का पलायन। उदयाचल पर उदित होते सूर्य देव। शनैः शनै परिसर सूर्य के प्रकाश से स्नात! उदयाचल से ऊपर जाते सूर्य की यात्रा के साथ मन्दिर परिसर में श्रद्धालुओं की बढ़ती संख्या। गुरु गोरखनाथ जी के जयघोष के साथ ही देर रात तक श्रद्धालुओं ने खिचड़ी चढ़ायी। रात तक लाखों श्रद्धालुओं ने गुरु गोरखनाथ जी का दर्शन किया।

गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज भोर से लेकर देर रात तक श्रद्धालुओं की सुधि लेते रहे। सम्पूर्ण मेला परिसर पर आपकी दृष्टि रही। जहाँ कहीं तनिक भी श्रद्धालुओं को असुविधा हुई महाराज जी ने अपने कार्यकर्ताओं को निर्देशित कर श्रद्धालुओं को सुविधा प्रदान की। मुख्य द्वार से लेकर मन्दिर तक अनेक बार आप श्रद्धालुओं के बीच देखे गये।

मकर संक्राति महापर्व के अवसर पर गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी ने कहा कि पिछले दस महीनों से इस सदी की भीषणतम महामारी कोरोना के चलते मानवता के सामने संकट खड़ा हुआ था। इस संकट से देश के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में देश आज सफलतापूर्वक उभरा है। देश में कोरोना के मामलों में भारी गिरावट आयी है। मकर संक्रान्ति का उत्सव कोरोना से जंग के पुरुषार्थ के उत्सव से कम नहीं है। भारत ने एक साथ दो-दो वैक्सीन लाँच की है। १६ जनवरी से वैक्सीन लगायी जायेगी। वैक्सीन को एक्टीवेट होने में समय लगेगा, वहीं हर एक नागरिक तक पहुँचने में भी समय लगेगा। हम मकर संक्रान्ति के इस आयोजन के सहभागी बनें लेकिन, 'दो गज की दूरी एवं मास्क है जरूरी' का पालन अवश्य करें।

उन्होंने देशवासियों को मकर संक्रान्ति की हार्दिक शुभकामना देते हुए कहा कि विश्वास व्यक्त करता हूँ कि मकर संक्रान्ति जीवन में उमंग और उत्साह भरेगा।

खिचड़ी मेले पर विशेष आवरण का लोकार्पण

गोरक्षपीठाधीश्वर और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने डाक विभाग के विशेष आवरण 'मकर संक्रान्ति पर्व एवं खिचड़ी मेला' का अनावरण किया। श्रीगोरखनाथ मन्दिर के तिलक सभागार में पूर्वाह्न ११ बजे हुए कार्यक्रम में पूज्य महाराज जी ने कहा कि डाक विभाग का यह प्रयास हमारी विरासत और परम्परा को आगे बढ़ाने में सहायक होगा। गोरखपुर का खिचड़ी मेला अब डाक विभाग की कार्यसूची का हिस्सा बन गया है। इस विशेष कवर पर पाँच रुपये का डाक टिकट

भी लगाया गया है। यह एक अवसर है जब हम अपनी विरासत और परम्परा की स्मृतियों को बहुत समृद्ध तरीके से आगे बढ़ा सकते हैं। डाक विभाग ने देश की विशिष्ट घटनाओं, पर्वों, कार्यक्रमों को इस व्यवस्था के साथ आगे बढ़ाया है। लोगों को अपनी विरासत को आगे बढ़ाने और आम जनता तक प्रचारित-प्रसारित करने का एक अवसर दिया है। डाक विभाग के इस प्रयास से भविष्य की पीढ़ी अपने पूर्वजों के बारे में अवगत हो सकेगी।

ध्यातव्य है कि इससे पूर्व सन् २०१५ में डाक विभाग ने राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की पहली पुण्यतिथि पर डाक टिकट जारी किया था। उसी टिकट को इस बार विशेष आवरण पर लगाया भी गया है। इस विशेष आवरण पर श्रीगोरखनाथ मन्दिर के माहात्म्य और खिचड़ी मेले के बारे में रोचक जानकारियाँ दी गयी हैं।

पूरे दिन चला भण्डारा

श्री गोरखनाथ मन्दिर में पूरे दिन भण्डारे चले। श्रद्धालुओं ने प्रसाद स्वरूप खिचड़ी ग्रहण की। यह क्रम गुरुवार को देर रात तक चलता रहा। मन्दिर परिसर की सभी धर्मशालाएँ श्रद्धालुओं से भरी पड़ी थीं, जहाँ श्रद्धालुओं को प्रसाद रूप में खिचड़ी दी गयी। महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति सभागार के बाहर दोपहर से खिचड़ी का वितरण प्रारम्भ कर दिया गया था, जहाँ श्रद्धालुओं ने खिचड़ी प्रसाद ग्रहण किया।

श्रद्धालुओं ने लिया मेले का आनन्द

मकर संक्रान्ति महापर्व पर बाबा गोरखनाथ को खिचड़ी चढ़ाने के बाद लाखों श्रद्धालुओं ने मन्दिर-परिसर में लगे मेले का आनन्द उठाया। मेला परिसर में खान-पान की दूकानों पर काफी भीड़ थी। श्रद्धालुओं ने अपनी जरूरत के सामानों की खरीददारी की, बच्चों ने झूलों का आनन्द लिया।

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

1.	गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2.	महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भगवती प्रसाद सिंह	80.00
3.	नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4.	आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5.	महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6.	गोरखबानी	रामलाल श्रीवास्तव	110.00
7.	गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8.	श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	8.00
9.	अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10.	गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11.	विवेक मार्तण्ड		7.00
12.	महार्थ मंजरी		6.00
13.	गोरखचरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
14.	हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15.	सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	25.00
16.	योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17.	योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18.	शाबर चिंतामणि	नित्यनाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19.	योगी सम्प्रदाय (नित्कर्म संचय)		90.00
20.	गोरख चालीसा		2.00
21.	नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22.	नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	30.00
23.	अमरकाया महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24.	युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25.	गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	130.00
26.	गोरक्षदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27.	तन प्रकाश	श्री श्री 108 बाबा चुन्नीनाथ जी	20.00
28.	हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
29.	यौगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30.	नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	70.00
31.	गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32.	सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33.	राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34.	राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
35.	Philosophy of Gorakhnath	A.K. Banerjee	175.00
36.	The Nath-Yogi Sampradaya and The Gorakhnath Temple		3.50
37.	An Introduction to Nath-Yoga	A.K. Banerjee	15.00
38	महन्त अवेद्यनाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	600.00
39	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
40	योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
41	महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ		40.00
42	श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास		40.00
43	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ		40.00
44	युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ		50.00
45	राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ		50.00

एन.पी./जी.आर-125/14 एन.पी./29075/76

बरगद की छाल, बीज, दूध और पत्ते रोगों की चिकित्सा में उपयोगी हैं। इनसे कफ, वात और पित्त-दोष को ठीक किया जाता है। नाक, कान और बालों की समस्या में भी इनसे लाभ होता है। इनमें उपस्थित एंटीआक्सीडेण्ट (सूजन घटाने वाला) और एंटी-माइक्रोबियल (बैक्टीरिया को नष्ट करने वाला) प्रभाव कई तरह के औषधीय लाभ पहुँचाता है। इसकी पत्तियों में कुछ विशेष तत्त्व जैसे- हेक्सेन, ब्यूटेनॉल, क्लोरोफार्म और पानी मौजूद होता है। ये सभी संयुक्त रूप से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस पेड़ की जड़ में हाइपोग्लाइसेमिक (रक्त-शर्करा को कम करने वाला) प्रभाव पाया जाता है। इसलिए मधुमेह की समस्या से राहत दिलाने के लिए सहायक है। अवसाद से छुटकारा दिलाने में बरगद की जड़ महत्त्वपूर्ण होती है। डायरिया और बवासीर की समस्याओं में बरगद के पेड़ से निकलने वाला दूध लाभदायक होता है। प्रस्राव (मूत्र) सम्बन्धी विकार में बरगद के पत्तों का उपयोग किया जाता है। कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को नियन्त्रित करने के लिए इसके जलीय अर्क का उपयोग किया जाता है। बरगद में मौजूद एंटीमाइक्रोबियल प्रभाव खुजली से राहत दिलाने में सहायक सिद्ध होता है तथा बैक्टीरियल इन्फैक्शन को दूर करने में सहायक होता है।

बरगद के पेड़ को 'वटवृक्ष' भी कहते हैं। इसका धार्मिक महत्त्व भी है। महिलाएँ 'वट सावित्री' की पूजा करते समय बरगद के पेड़ की पूजा करती हैं। यह वृक्ष बहुत विशाल और बड़े पत्तों वाला होता है। यह वृक्ष विशाल तना और शाखाओं वाला होता है। यह बहुत ही छायेदार और लम्बे समय तक जीवित रहने वाला वृक्ष है। यह अकाल के समय में भी जीवित रहता है।

प्रकाशक :
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in I E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्स: ०५५१-२२५५४५५